RNI No. 7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 57 अंक : 02 प्रकाशन तिथि : 25 जनवरी कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 फरवरी, 2020
शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

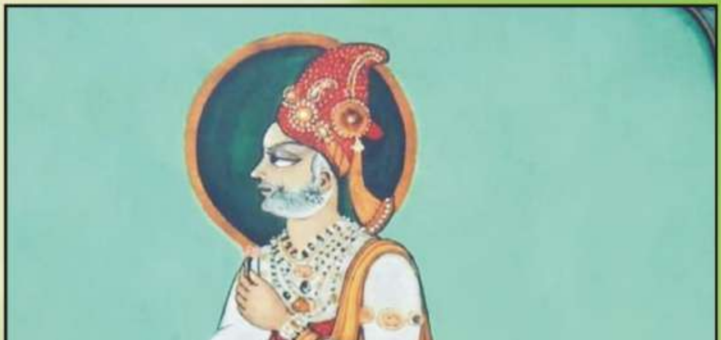

महारावल जैसलदेव जी

जैसल नामा भूपति यदुवंशी इक थाय।
कोई काल रे अंतरै एथ रहेसी आय।।

HITKARI & SWARAJ

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान
फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़
आजाद सिंह राठौड़
सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी & स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड
हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति

4 फरवरी, 2020

वर्ष : **57** अंक–**02**

–: सम्पादक :–

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क – एक प्रति : **15/-** रुपये, वार्षिक : **150/-** रुपये, पंचवर्षीय : **700/-** रुपये, दस वर्षीय : **1300/-** रुपये

विषय - सूची

❍ समाचार संक्षेप ✍ 04
❍ चलता रहे मेरा संघ ✍ 05
❍ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में) ✍ श्री चैनसिंह बैठवास 07
❍ तनशा की याद ✍ स्व. भंवरसिंह बेण्याकाबास 10
❍ जीवनमुक्ति की प्राप्ति ✍ स्वामी यतीश्वरानन्द 11
❍ मेरी साधना ✍ प्रो. रूपसिंह लिम्बड़ी 15
❍ सब अपनी-अपनी जगह महान् हैं ✍ स्वामी विवेकानन्द 19
❍ महारावल जैसलदेव जी ✍ श्री रतनसिंह बडोड़ागाँव 21
❍ विवाह ✍ स्व. सूरतसिंह कालवा 25
❍ विचार सरिता (द्वापञ्चाशत् लहरी) ✍ श्री विचारक 27
❍ बड़ा सच ✍ श्री हरिसिंह उण्डखा 30
❍ वर्तमान परिपेक्ष्य में बाल्यावस्था व शिक्षा ✍ श्री भँवरसिंह रेड़ी 31
❍ अपनी बात ✍ 34

समाचार संक्षेप

स्थापना दिवस :

श्री क्षत्रिय युवक संघ के माननीय संघप्रमुखश्री ने एक दिन कहा कि हम जयन्तियाँ व अन्य कार्यक्रम तो बड़े उत्साहपूर्वक मनाते हैं लेकिन संघ के स्थापना दिवस को जिस उमंग से मनाया जाना चाहिए, वैसी उमंग नजर नहीं आती। उसी दिन संचालन प्रमुख ने अपने सहयोगियों से इस पर चर्चा की और इस वर्ष स्थापना दिवस (22 दिसम्बर) उत्साह पूर्वक मनाने का निश्चय किया गया। विचार यह भी आया कि क्योंकि संघ अपनी यात्रा के 73 वर्ष पूर्ण कर 74वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है, इसलिए कम से कम 74 जगह कार्यक्रम मनाया जाय। निर्णय से सभी संभाग प्रमुखों व प्रान्त प्रमुखों को अवगत करवाया गया और समाचार संघ क्षेत्र में चारों तरफ फैल गया। परिणामस्वरूप पूर्व में जहाँ बड़े शहरों में ही मनाया जाता था और आसपास की शाखाओं के स्वयंसेवक वहीं आ जाया करते थे; इस बार जगह-जगह से अपने क्षेत्र में स्थापना दिवस मनाने के अनुरोध आने प्रारम्भ हो गये। कुछ स्थानों पर अलग न मनाकर पास की शाखा के साथ मिलकर मनाने की सलाह दी गई तो कुछ स्थानों से अनुरोध नहीं आया था पर उत्साहपूर्वक मनाकर समाचार ही भेजा गया। 74 जगह मनाने का लक्ष्य था लेकिन 100 से ज्यादा स्थानों पर स्थापना दिवस उत्साहपूर्वक मनाया गया।

राजस्थान और गुजरात में अनेक स्थानों पर बड़े रूप में आयोजन रहा तो अन्य स्थानों पर कस्बों व गाँव स्तर पर समाज बन्धुओं ने उपस्थित होकर उत्साह बढाया। दिल्ली, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, केरल व आन्ध्रप्रदेश में भी प्रवासी बन्धुओं ने उत्साहपूर्वक स्थापना दिवस मनाया। दुबई में जहाँ श्री क्षत्रिय युवक संघ की शाखा लगती है, वहाँ भी उत्साहपूर्वक स्थापना दिवस मना। वहाँ संघ के जयंतियाँ आदि कार्यक्रम भी आयोजित होते रहते हैं।

संघ के एक वयोवृद्ध स्वयंसेवक का फोन आया और अपने मन के भाव प्रकट किये। उन्होंने कहा कि भारत के दूसरे प्रदेशों में तो संघ कार्य प्रारम्भ हो ही रहा है और संघ कार्य विस्तारित हो रहा है लेकिन मेरी इच्छा थी कि कार्यालय में कहूँ कि अब विदेश में भी कार्य फैलाने के प्रयास किए जाएँ। लेकिन 4 जनवरी का पथ प्रेरक पढ़कर मालूम हुआ कि दुबई में भी कार्य हो रहा है तो अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उनकी प्रसन्नता उत्तरोत्तर बढती रहे, यही संघ की चाह है और संघ का स्वयंसेवक जहाँ भी जाता है, वहाँ वह संघ कार्य की भूमिका तलाशता है। सुदूर सीमान्त गाँव धोलासर में शाला के छोटे-छोटे बच्चों ने जो लगन दिखाई, उनके भाव को नमन।

स्थापना दिवस के कार्यक्रमों में संघ की विचारधारा पर उद्‌बोधन रहे, साथ ही संघ के नये वर्ष में प्रवेश के अवसर पर माननीय संघप्रमुखश्री द्वारा भेजा गया नववर्ष संदेश भी सभी जगह पढा गया। आज समाज और राष्ट्र में सदाचरण का नितान्त अभाव है, इसे ठीक क्षात्रत्व द्वारा ही सही किया जा सकता है लेकिन हम क्षत्रिय भी अपना कर्तव्य भूल चुके हैं। हम निरंतर अभ्यास से संस्कारित हों, क्षत्रियोचित चरित्र को अपनाएँ, इसी से त्रस्त मानवता की कराह को मेटा जा सकता है। संघ यही कार्य करने में जुटा है। परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं हो, फिर भी कर्तव्य कर्म करते रहना ही वांछित है।

क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन :

श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन श्री क्षत्रिय युवक संघ का अनुसांगिक संगठन है। गत वर्ष 12 जनवरी को इसकी स्थापना हुई थी। 12 जनवरी को इसका स्थापना दिवस भी अनेक स्थानों पर मनाया गया। एक वर्ष में योजना बद्ध तरीके से आर्थिक आधार के आरक्षण की विसंगतियाँ दूर करवाने हेतु कार्य किया। सफलता भी मिली। इसके अलावा अन्य समाजों के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार बनाने के लिये भी स्थान-स्थान पर कार्यक्रम रखे। समाज के अधिकारी बन्धुओं का कार्यक्रम रखकर समाज की आवश्यकता में उनके योगदान की चर्चा की गई। छात्र संघों से जुड़े नये-पुराने बन्धुओं का कार्यक्रम भी आयोजित हुआ और छात्र संघ चुनावों में समाज भाव से प्रयास करना तथा अपने अन्दर की नेतृत्व क्षमता को दृढ़ता प्रदान कर समाज हित में लगाने पर विचार-विमर्श हुआ। अपने स्थापना दिवस पर वर्ष भर के कार्य की जानकारी दी गई और नये वर्ष में किए जाने वाले कार्यक्रमों की सूचना दी।

*

चलता रहे मेरा संघ

(उच्च प्रशिक्षण शिविर गनोड़ा (बांसवाड़ा) में 22 मई, 2019 को संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी द्वारा उद्‌बोधित प्रभात संदेश।)

बांसवाड़ा जिले के गनोड़ा गाँव में ग्यारह दिवसीय हमारा प्रशिक्षण शिविर चल रहा है, उसका आज पांचवां दिन है। हमने अपने आपको बनते देखा, अपना सुधार होते देखा और इसमें अप्रत्याशित सफलता को भी देखा। अपने निवास स्थान पर, अपने घर पर, अपने परिवार में जो अस्त-व्यवस्ताएँ रहती हैं, उनके ऊपर हमारा ध्यान नहीं जाता। अब जाना चाहिए। यहाँ दी जाने वाली शिक्षा केवल शिविर के लिये ही नहीं है, यह जीवन के लिये है। क्षत्रिय युवक संघ के इस संदेश के आप संवाहक हैं। यह संदेश केवल यहाँ तक के लिये नहीं है। आपके जीवन व्यवहार के माध्यम से यह संदेश संसार तक पहुँचना चाहिए।

आप आयु में छोटे हैं, या आप आयु में बड़े हैं; विद्याध्ययन आपका कम है, अधिक है या नहीं है; यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। हम सब विधाता की कृतियाँ हैं। हमें बताया गया है कि समस्त प्राणी मनुष्य के सदुपयोग के लिये हैं और मनुष्य योनि को भगवान ने अपने उपयोग के लिये बनाया है। इसीलिए मनुष्य को भगवान ने विशेष शक्तियाँ प्रदान की हैं, प्रतिभा प्रदान की है और वे हर व्यक्ति में हैं। क्षत्रिय युवक संघ के स्वयंसेवकों में ऐसा है, ऐसा ही नहीं, हर मनुष्य को भगवान ने इस प्रकार की प्रतिभा दी है, ऐसी ऊर्जा दी है कि वह हर प्रकार की कठिनाई को सहन कर सकता है। समस्त बाधाओं को तोड़ सकता है। समस्त वृत्तियों को तोड़ सकता है।

वह शक्ति योग की भाषा में कुण्डलिनी शक्ति कहलाती है। वह सर्प की तरह से कुण्डली मारकर (गुदा और मूत्र मार्ग के संयोग स्थान) में सुप्त रहती है। उसका जागरण बड़ा कष्टदायक होता है। लेकिन एक बार जब जाग जाती है तो वह अपनी यात्रा प्रारम्भ करती है। वह जीवनी शक्ति, वह संजीवनी शक्ति यात्रा प्रारम्भ करती है। उसकी यात्रा में अनेक पड़ाव हैं। हमारे शरीर में जो चक्र हैं, उनका वह भेदन करती है। उन चक्रों के भेदन से विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ मिलती हैं। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार आदि चक्रों का भेदन करती है। जीव के ब्रह्म तक पहुँचने के लिये इस कुण्डलिनी शक्ति का जागरण आवश्यक है। अन्त में जब सहस्रार पर पहुँचती है तो वहाँ अमृत बरसता है। हम उस अमृत की कल्पना नहीं कर सकते क्योंकि हमने उसको न देखा न भोगा। उसको जानने का कभी प्रयत्न भी नहीं किया। योग को जो समझने वाले हैं, वे इसकी यात्रा का वर्णन करते हैं। कोई साधक तो पहले चक्र पर रुक जाता है क्योंकि कष्ट होता है। पहले चक्र से चौथे चक्र तक बड़ा भयंकर दर्द होता है। जब यह पार कर लेते हैं तो बड़ा आनन्द आता है, ऐसा योगियों ने बताया है। योग की पुस्तकों से, योगी लोगों के अनुभवों से ऐसी जानकारी मिली है। ऐसी शक्ति हर मनुष्य में है। उसका जितना जागरण होता है, उतना हमारा विकास हो पाता है। इस जागरण में आयु का कोई सम्बन्ध नहीं, विद्याध्ययन का कोई सम्बन्ध नहीं। हमारे परस्पर सम्बन्धों का भी कोई सम्बन्ध नहीं है। वह अकेली यात्रा करती है।

क्षत्रिय युवक संघ का मार्ग संपूर्ण योग मार्ग है, इसलिए ये सब जानकारियाँ बतानी आवश्यक हैं। कुण्डलिनी शक्ति का जागरण कैसे होता है, यह बताया नहीं जा रहा है लेकिन न बताते हुए भी हम धीरे-धीरे उसी ओर बढ़ रहे हैं। हम इस बात को जान लें कि हमारे अन्दर असीम शक्ति है। वास्तव में वह जो असीम शक्ति है वह केवल परमेश्वर तक पहुँचने की यात्रा मात्र ही नहीं है।

संसार में प्रेम बरसाने की क्षमता भी हमारे अन्दर है। सौहार्द बनाने की क्षमता भी हमारे अन्दर है और यह सब हमको करना है। यह कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो सकती है और उसे जाग्रत करवाने का प्रयत्न भी हो रहा है। लेकिन विषय गंभीर है और हमारी समझ नहीं है। किसी के पिता की हत्या कर दी जाती है तो वह बदले की भावना से इतना आक्रान्त रहता है कि उसे नींद नहीं आती। जब तक वैसी वेदना भरी चाह जाग्रत नहीं होती, यह जागरण भी तब तक नहीं होता। हमारा जीवन निरर्थक जा रहा है, कितना नुकसान हमारा हो रहा है, इसको हम नहीं समझते हैं तो कितने लापरवाह हैं हम। उस लापरवाही से छुटकारा पाकर परवाह करने वाला बनना है, उत्तरदायी बनना है।

बहुत सिद्धियों का भण्डार हमारे पास है यादि इस जागरण को कर दिया जाए। ऐसी सिद्धियाँ मिल सकती है कि बीमार व्यक्ति को देख लें, उसके पास से गुजर जाएँ तो वह स्वस्थ हो जाए। मरे व्यक्ति की अर्थी जा रही है, उसे अपने संकल्प से जिन्दा पर दिया जाए। ऐसी अकल्पनीय शक्तियाँ भगवान ने हमें दी हैं पर जो रुक गया कि इसे जिन्दा कर दूँ, इसके शरीर को जागृत कर दूँ, मैं इसकी सहायता कर दूँ, तो वह रुक जाएगा, आगे की यात्रा रुक जाएगी। हमें अपनी प्रतिभाओं का विकास करना है, रुकना नहीं है। ऊर्जा की यात्रा करनी है, रुकना नहीं है। जो रुक जाता है, उसने उतना तो प्राप्त कर ही लिया पर यदि साधना चलती रही तो इस जीवन में नहीं तो अगले जीवन में उस ग्रन्थी को भेद कर आगे निकल जाएगा। हो सकता है हमें कई जीवन लगें लेकिन यहाँ की सारी प्रक्रिया में योग का बड़ा महत्त्व है।

यहाँ छोटे-छोटे नियम हमको बताए गये हैं। यहाँ की शिक्षा शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान की ही ओर ले जाती है। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह जो यम हैं, उनका अभ्यास भी होता है। आसन, प्राणयाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये जो योग के आठ अंग हैं, यहाँ के कार्यक्रमों में, कहीं न कहीं समाहित हैं। समय कम मिलता है। ग्यारह दिनों में ही पूरा प्रशिक्षण नहीं हो पाता। संसार में सांसारिक समस्याओं का सामना भी हमको करना है। संसार में ही तो हम रहते हैं। लेकिन हम सो कैसे जाते हैं। जिसकी शक्ति जाग्रत हो गई वह सो नहीं सकेगा। इसका अर्थ यह नहीं कि उसे नींद आती ही नहीं। पर्याप्त नींद ले लेता है, फिर कार्यक्रमों में नहीं सोएगा। जिसको अपनी शक्तियों का जागरण करना है, वह इसे याद रखे कि मेरे अन्दर जाग्रत होने की शक्ति है, मैं क्यों पिछड़ रहा हूँ। वह लगन हो, वह पुकार हो तो उस पुकार को भगवान सुनता है, हमारी सहायता करता है।

उस कुण्डलिनी शक्ति को हमारे स्वाधिष्ठान चक्र से प्रारम्भ कर ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचाने की शक्ति हमारे अन्दर है। यह एक पूरी यात्रा है जो क्षत्रिय युवक संघ में भली प्रकार घटित होती है। इसलिए इस मार्ग को संपूर्ण योग मार्ग कहा गया है। यहाँ की सारी गतिविधियाँ वहाँ पहुँचाने के लिये है। हमको अपना जागरण करना है या नहीं, यह हमारे ऊपर निर्भर है। अगर सोचें कि इस लफड़े में क्यों पड़ें, हमको तो जो कुछ करना है वह समाज में करना है, राष्ट्र में करना है संसार में करना है। लेकिन वह कार्य भी ऊर्जा के बिना नहीं हो सकता, वह शक्ति के बिना नहीं हो सकता। वह शक्ति हमारे अन्दर तो है पर उसे घटित करना है। यह हमारी साधना है। ईश्वर से प्रार्थना करें, उसकी सहायता के बिना तो यह काम हो नहीं सकता। उस तक पहुँचने का मार्ग भी वही बताएगा।

सारी साधना सामाजिक है, समष्टिगत है। समूह गत साधना है। संसार को भी हमें समूहगत साधना के भीतर लेना है। हमारे साथ पूरा संसार आना चाहिए। इस कार्य को और कोई कर नहीं सकेगा। मैं आपको दावे के साथ कह सकता हूँ कि आप कर सकते हैं क्योंकि आप सबके

(शेष पृष्ठ 9 पर)

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

- चैनसिंह बैठवास

श्री क्षत्रिय युवक संघ के कार्य का विकास और विस्तार अनेक झंझावतों को झेलते हुए अनवरत गति से चलने लगा। समाज के प्रबुद्ध और कर्मशील लोगों का पर्याप्त सहयोग और स्नेह संघ को मिला है, पर लोगों का विरोध भी भरपूर रहा है। विरोध केवल बाहरी ही नहीं, आन्तरिक विरोध भी कभी-कभी उभरता और समाप्त होता रहने की क्रिया भी चलती रही।

विरोधी यानी आलोचक भी एक श्रेणी के नहीं होते, उनमें कई आलोचक तो ऐसे होते हैं जिनकी आलोचनाओं का कोई आधार ही नहीं होता। उनकी आलोचनाएँ यानी विरोध निराधार होता है। ऐसे अनेकों लोग जिन्होंने संघ को व संघ के संस्थापक पूज्यश्री तनसिंहजी को निकट से न तो कभी देखा, न ही समझा और न कभी समझने का प्रयास ही किया, फिर भी उन्होंने विरोध किया, भरपेट गालियाँ दी, बुरा-भला कहा। उनकी आदत में ही विरोध समाहित हो गया, इसलिए विरोध करना है, तो करना है। ऐसे विरोध निराधार नहीं तो और क्या है? इनके अलावा ऐसे भी अनेकों लोग हैं जिन्होंने पूज्य श्री के बारे में यानी संघ के बारे में किसी से कुछ अनर्गल प्रलाप सुनकर, उसी बात को तोते की तरह समय-असमय दोहराते रहे हैं। ऐसे लोगों को हीककत से रूबरू करने का कितना ही प्रयास क्यों न कर लें, वास्तविकता तक ले चलने की कितनी ही कोशिश क्यों न कर ली जाए, वे वास्तविकता जानना ही नहीं चाहते। वे तो अपनी पूर्व धारणा पर ही बने रहना पसन्द करते हैं, उसे कतई छोड़ना नहीं चाहते, उसी से बंधे रहने में ही अपनी शान समझते हैं। चाहे आप उन्हें समझाने का लाख प्रयास क्यों न कर लें, विरोध करने वाले तो करेंगे। उनका न तो कोई धर्म होता है, न कोई ईमान। पूज्य श्री तनसिंहजी ने हमारे हौसले को बुलन्द करते हुए आलोचना के सम्बन्ध क्या कहा ?-

त्याग तप को युग से मिलती है सदा आलोचना,
मौन उस पे रह के करते कौम की हम वन्दना,
इन उमंगों के गवाह केवल धरा औ आसमाँ।।

त्याग, तप के मार्ग पर चलने वालों की किसकी आलोचना नहीं हुई। जिस किसी ने यह मार्ग चुना, उनकी आलोचना हुई है, उनका विरोध हुआ है, चाहे वह मर्यादा पुरुषोत्तम राम हों, चाहे योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण हों, चाहे ईसा मसीह हों, चाहे महावीर व बुद्ध हों, चाहे मोहम्मद साहब हों, चाहे सुकरात हों और चाहे इस युग के मसीहा हमारे पूज्य श्री तनसिंहजी हों, इससे कोई नहीं बच पाया, सब लपेटे में आये हैं। यह एक युग की नहीं, युग-युग की हकीकत कहानी है जो चली आयी है और आगे भी घटित होती रहेगी, इतिहास इसका साक्षी है।

बाहरी विरोध के साथ-साथ भीतर घात भी हुई है। छोटी-मोटी भीतर घात तो होती ही आयी है। भीतर घात में भी ऐसे भी अवसर आये हैं जब अपने ही पराये बनकर सामने खड़े होकर भीषण प्रहार करते देखे गये। कल तक संघ को अपना कुटुम्ब कहने वाले, विरोधी बनकर अपने ही इस बसे बसाये कुटुम्ब को अपने ही हाथों उजाड़ने लगे और अपने ही कुटुम्ब के मुखिया से विद्रोह कर बैठे।

पूज्य श्री तनसिंहजी के निकट समझे जाने वाले कुछ वरिष्ठ सहयोगी, जिन्होंने जीवन भर साथ रहने और साथ देने का वादा किया, वे ही अपनी क्षुद्र पद आकांक्षाओं व महत्त्वाकांक्षाओं, अपनी भ्रान्तिपूर्ण धारणाओं, अपनी कुछ सुविधाओं, अपनी तुच्छ स्वार्थ वृति, लोभ-लालच और

ईर्ष्या-द्वेष के वशीभूत होकर उनके विश्वास को खण्डित कर उन्हें आघात पहुँचाया, वादा खिलाफी की, उन्हें धोखा दिया, उनके साथ छल किया और बीच राह छोड़ चले। कुछ ने तो ऐसा समय चुना जब पूज्य श्री तनसिंहजी पक्षाघात से ग्रस्त थे।

ऐसे लोगों के जीवन में शरणागत और समर्पण का भाव नहीं हुआ करता। ऐसे लोग अपने कुटुम्ब के एक जीवन्त और ज्वलन्त घटक कभी नहीं बन सकते। अपितु ऐसे लोगों के जीवन में तो लोभ, अहंकार, स्वार्थ वृति, पद लोलुपता, क्षुद्र आकांक्षाएँ ही बनी रहती हैं।

इन लोगों के लिये पूज्यश्री तनसिंहजी ने क्या नहीं किया? इनके जीवन को सुख और शान्ति से भरने के लिये उनके हृदय से सदैव दुआएँ निकला करती थी। उन्होंने इन लोगों के जीवन को संवारने के लिये अपना सब कुछ लुटा दिया, पर बदले में उन्हें मिला क्या? अपनों से धोखा, छलना, विश्वासघात, अपमान, गालियाँ, कीचड़ और पता नहीं कितना जहर पी लिया। लम्बे-चौड़े वादा करने वाले ये लोग विश्वासघाती बन गए। ऐसा पहली बार नहीं हुआ, होता आया है। किस पृथ्वीराज को हेहुलराय नहीं मिला और सांगा को सरहदी, किस अमरसिंह को अर्जुन गौड़ नहीं मिला और किस दुर्गादास को निर्वासन नहीं मिला। इन द्रोहियों की चलती आ रही परम्परा का अब खात्मा हो, इनकी वंशबेल नष्ट हो।

इन लोगों के विरोधी रवैये पर पूज्य श्री तनसिंह जी ने कहा-

''तुम्हारा यह विरोध हमारे लिये सबसे बड़ा वरदान बनेगा। आस्तीन का सांप इसलिए कि तुमने जीवन भर साथ रहने और साथ देने का वादा किया और हमने तुम पर भरोसा किया। तुम्हारी हर बात को हमने लोहे की लकीर मानकर आदर किया। हमारे विश्वासपात्र कहे जाने वाले कितने दयनीय निकले कि अपनी लेखनी से उनका उल्लेख करना भी मैं समाज की बहुमूल्य सम्पत्ति का अपव्यय समझता हूँ। तुमने आन्तरिक विरोध शुरू किया। अपने कुछ गुर्गों से तुमने यह नापाक हरकतें शुरू की जिस पर तुम्हें लज्जा से डूब मरना चाहिये। तुमने उस दरख्त को काटना शुरू किया जिसकी छाया में तेरा जीवन संवर रहा था। तुमने अपने नजदीकी व भोले-भाले लोगों को हमारे विरुद्ध करने का षड़यंत्र किया। हम आश्चर्यचकित हुए पर हमें आश्चर्यचकित होना नहीं चाहिए। कारण स्पष्ट है। जिस बर्तन में भोजन करता हो, उसे जो फोड़ने में हिचकिचाता नहीं हो, जिससे आदर मिला हो उसी घर की इज्जत पर डाका डालने वाला क्या नहीं कर सकता? धन के लिये नहीं जो दो सौ रुपयों तक में गिरवी रखा जा सकता है, वह अपने स्वार्थ के लिये क्या नहीं कर सकता? लेकिन हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि अमृत से परिपूर्ण एक शाश्वत पेय को छोड़कर जो शराब की बोतल में अपना गम गलत करने का नारा लगा सकता है-वह क्या कर सकता है। ....यह अच्छा हुआ जो तुमने सक्रिय विरोध शुरू किया। कौम के आखिरी विभीषण को सौभाग्यशाली महसूस करना चाहिये कि किसी दिन हमने उसे राम मानकर जन-जन के हृदय में पूजा था। उस सड़े हुए फल को पकाने के लिये हमने अपनी हृदय की कलियों को मुरझाया, परन्तु हमने कोई एहसान नहीं किया। हमें धोखा हुआ किन्तु धोखा हमारी बुद्धि ने दिया। हमारी विश्वस्त पहचान मात खा गई। आज हमारे हृदय में एक घाव हो गया है। इतने कटु शब्दों में तुम्हारे ऊपर इतना बरसना अच्छा नहीं है लेकिन एक बार तुम हमारे हृदय में बहने वाली मवाद को देखोगे तो तुम अवश्य समझोगे। तुमने जो हमें पीड़ा उपहार रूप में दी है, उसने हमें कर्म की अद्‌भुत प्रेरणा दी है। ....हम पिछले कई वर्षों में जो अनुभव नहीं कर पाये वह तुम्हारे विरोध ने दिखा दिये। अब हम अधिक स्वस्थ, सबल और पवित्र हैं। तुम्हें आज हम धन्यवाद देना चाहते हैं, पर तुम बुरा मान जावोगे इसलिए धन्यवाद न देकर गालियाँ दे रहा हूँ। क्या करूँ यह मेरा हृदय का आर्तनाद है-यह एक गरीब की आह है, यह एक दुखी व्यक्ति की आत्मकथा है। एक टूटे हुए और

पीड़ित अन्त:करण की पुकार है। यदि तुम किसी अपने ही आत्मीय से कभी दुखी हुए हो तो तुम अवश्य मेरे इस दुख को पहचानेगे और गाली-गलौच को सहज अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार करोगे।''

जो स्वयं सेवक इस विरोधी गुट के प्रभाव में थे, इनसे जिनकी नजदीकी थी, उन्हें भी ये ले डूबे। ऐसे लोगों में से कुछ तो इनकी ही राह पर चलकर संघ विरोधी हो गये, कुछ लोग निष्क्रिय होकर संघ से दूर चले गये, कुछ लोग ऐसे थे जिन्हें देर-सवेर समझ आयी और वे पुन: संघमय जीवन जीने आ तो गये, पर अपने भविष्य को लेकर आशंकित थे, अपनी दुर्गति को लेकर भयभीत थे। इस पर पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा-

''तुम्हारे विरोध यात्रा के दौरान कुछ ऐसे भी लोग हैं जो अपने भय से भयभीत हैं। उन्हें अब यह खतरा उत्पन्न हो गया है कि तुम्हारी ही भाँति उनकी दुर्गति होगी। उनका यह भ्रम ही है। वास्तव में बात यही है, कि प्रायश्चित कोई अनुष्ठान नहीं है, वह तो आत्मा की निर्मल वाणी है। जिस व्यक्ति की आत्मा ने एक बार भी अपनी निर्मल वाणी से अपने आपको धो दिया, उसके पवित्र होने में कोई संदेह नहीं रहा। इसके अतिरिक्त वे सब लोग जाने या अनजाने मेरे संरक्षण में हैं। मेरा कर्तव्य है कि मैं उन्हें सभी भयों से मुक्त कर उन्हें सुरक्षा का विश्वास दिलाऊँ। उनकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है क्योंकि वे जिस कुटुम्ब के हैं मैं उसका मुखिया हूँ। तुम भी मेरे परिवार के ही व्यक्ति हो-किन्तु तुमने मुझे कुटुम्ब का मुखिया बने रहना एक दिन स्वीकार नहीं किया। ....आज मैं मुखिया हूँ और जिस दिन बाहर फेंका जाऊँगा उस दिन यह आदर्श रखूंगा कि समाज चरित्र क्या है? और यह पसन्द करूंगा कि मेरी समाधि क्षिप्रा के तीर पर किसी ऐसे ही सिपाही की समाधि के पास बनाई जावे। निर्वासित होकर कुटुम्ब को न तो बुरा कहूँगा और न उसकी सत्ता के लिये रोता फिरूँगा।''

विधाता का यह विधान है कि महापुरुष और उनके महान कार्यों का सदैव समर्थन तो हुआ है, पर विरोध भी कम नहीं हुआ। विरोध सत्य के लिये अनिवार्य भी है। सद् कार्य का ज्यों-ज्यों विरोध होता जायेगा, त्यों-त्यों वह अधिक निखरता जायेगा।

संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं, उनका और उनके द्वारा प्रतिपादित महान कार्यों का सदैव विरोध हुआ है। इसकी पुष्टि संसार के विगत इतिहासों को देखकर की जा सकती है। श्री क्षत्रिय युवक संघ का विरोध भी कम नहीं हुआ, पर यह ईश्वरीय कार्य है, सत्यम्, शिवम् व सुन्दरम् है, उसे विरोध की अग्नि जला नहीं सकती, बल्कि उस विरोध के ताप से वो अत्यधिक परिष्कृत, आभामय और पवित्र होता गया, बनता गया और साथ में और अधिक प्रसारित हो रहा है और फलता-फूलता जा रहा है।

(क्रमश:)

पृष्ठ 6 का शेष

चलता रहे मेरा संघ

पास वह शक्ति है, पर उस शक्ति को, उस ऊर्जा को कौन जगाए? यहाँ उसे जगाने का प्रयत्न किया जा रहा है। अपने आपको इतना हीन न समझें। यह जीवन बिन्दु है, पानी का एक टपका है जो नदी में मिलकर समुद्र तक जा सकता है, यह कल्पना नहीं है। यदि ऐसा प्रयत्न नहीं कर रहे हैं तो हमारा जीवन, एक बूंद पानी, सूख जाएगा। हमको उस नदी में शामिल होना है। यह नदी है क्षत्रिय युवक संघ और सागर है परमेश्वर। व्यष्टिगत, समष्टिगत और परमेष्टिगत साधना क्षत्रिय युवक संघ साथ चलाता है। हमारे जीवन को निखारने के लिये, संसार को कुछ देने के लिये, ईश्वर तक पहुँचने के लिये। परमेश्वर आपकी सहायता करे, यह संदेश आप दुनिया को दे सकें, यह तभी होगा जब साधना आपके जीवन में घटित हो। आज के दिन प्रभात में हम लोगों के लिये और संसार के लिये क्षत्रिय युवक संघ का यही मंगल संदेश है।

जय संघशक्ति!

तनशा की याद

– स्व. भंवरसिंह बेण्याकाबास

तनशा थाँनै याद करै आ धोराँ की धरती।
आ धोरां की धरती।
इण में जलम्या इण में रमिया देखी जाति नै मरती।
देखी जाति नै मरती।।

सुख तो थाँको साथ न दीनो दुख की ही चाकी फिरती।
तूफाना सूं कदै न डरिया, डटता थे सामी छाती।
भाईड़ा दारूड़ा पीता मूँडा पर माख्यां भिरणाती।
टीका टमका और डायजा पातरियाँ मूमल गाती।
इक दूजा की टाँग खींचता मूँछां झूँठो बळ खाती।
ऐड़ी हालत देख समाज की थाँकी छाती भर आती।
तनशा थाँनै याद करै...........।।

बिन गुवाळ की भेड़ाँ जाणै सूनी रोई में फिरती।
बण्या गुवाळया टाबरियाँ नै थाँकी शिक्षा मन भाती।
सदाचार सूँ सदा चालणों धन दौलत आती जाती।
इणी भाँत की शिक्षा देता सबके हिवड़ै जम जाती।
मिनख पणा की ऐड़ी बाताँ म्हे याद कराँ अब दिन राती।
तनशा थाँनै याद करै...........।।

बाल पणां मं हुया अनाथ मायड़ मीठी बातां करती।
थाँकी मायड़ तो रजपूती थाँकै हिवड़ै लग जाती।
छोड़ घरां नै दर दर भटक्या नींद बिना आँख्याँ राती।
सोरी नींद कदै न सूता हिवड़ै हूकाँ नीसरती।
खरी कमाई अब ताँई की बाँट देई पाँती पाँती।
थे तो जीवण सुफळ बणायो म्हे घींसरिया जीवत माटी।
तनशा थाँनै याद करै...........।।

गीता में केशव पाठ पढ़ायो कर्म योग को अरजन नै।
बा ही शिक्षा युवक संघ आप दिराई म्हां सब नै।
सखाभाव सूं साथ रैवणो चोखो लाग्यो छो थानै।
एक एक सूं ग्यारह बणिया अब तो सेन हुई अण गिणती।
आज फूलती फलती देखो युवक संघ की आ खेती।
आँ बाताँ को गरब न करणो आ थाँकी कैणावत माती।
तनशा थाँनै याद करै...........।।

भूस्वामी जद हुआ एकठा दिल्ली की कुरसी भय खाती।
ऐड़ो जलसो देख्यो जैपर में अचरज कीनो गुजराती।
हरीसिंघजी चोखो माणस जाय जळाई संघ की बाती।
जद सूं गुजराती धरती पर मेळ बढ़ायो क्षत्रिय जाति।
खाकी साफो खाकी कुरता चश्मो अर मोटी धोती।
रजथानी बाना की टणकाई संसद में थाँकी होती।
तनशा थाँनै याद करै...........।।

बालपणां का युवक संघ में घरका ही आड़ा फिरता।
शाखा और शिविर में जाता टाबरिया मन में डरता।
मीठा भोजन छोड़ घरां का जाय शिविर में चणा चबाता।
अब कोई को डर नहिं लागै आ छायाँ फिरती ढ़लती।
तनशा थाँनै याद करै...........।।

आप सुरग में आज बिरजो म्हे जाणां म्हाकै साथै।
सुपा में भी बोधिक देवो बीछड़ जावो परभातै।
मिनखा दे माटी में मिलगी आत्मा अब भी म्हाकै साथै।
जूना कापड़ छोड़ आतमा ‘‘लौ’’ में ‘‘लौ’’ आ मिल जाती।
तनशा थाँनै याद करै...........।।

घणां जणां आवै ई जग में चींटी कीड़ी की मौत मरे।
खावै पीवै मौज उड़ावै बां नै कुण अब याद करै।
थाँ सरका बिरला ही जुग में आवै अर कुछ काम करै।
अमर हुया थे मुकती पाई म्हानै समाज की दे थाती।
तनशा थाँनै याद करै...........।।

*

ऐसे लोग इस संसार में विरले ही हैं जिन्हें परख कर संसार के भंडार में रखा जा सके, जो अभिमान से ऊपर उठे हुए हों, जिनकी ममता व लोभ समाप्त हो गए हों। – **गुरुनानक**

गतांक से आगे

जीवनमुक्ति की प्राप्ति

- स्वामी यतीश्वरानन्द

आध्यात्मिक मुक्ति का सोपान – नैतिक मुक्ति :

भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय में दैवी सम्पद् या सद्गुणों युक्त तथा आसुरी सम्पद् या दुर्गुणों युक्त व्यक्तियों का वर्णन है। अभय, मन की शुद्धि, ज्ञान, संयम, दान, दम, यज्ञ ऋजुता, अहिंसा, सत्य, त्याग, शान्ति, सभी दु:खी प्राणियों के प्रति दया व कोमल भाव, विनय, धैर्य आदि दैवी सम्पद् है। आसुरी सम्मद् का विस्तार से वर्णन किया गया है, लेकिन संक्षेप में अहंकार, दर्प, क्रूरता और अज्ञान है। इन दो प्रकार की सम्पदों का अन्तर त्रिगुणों के कारण है। जिनमें तमस् और रजस् का प्राधान्य रहता है, वे आसुरी सम्पद् युक्त होते हैं। जिनमें सत्त्व का प्राधान्य रहता है, वे दैवी सम्पद् युक्त होते हैं।

यदि हम अपने जीवन का अवलोकन करें तो पाएँगे कि हममें दोनों प्रकार के गुण हैं। कभी हम देवता की तरह तो कभी असुर की तरह आचरण करते हैं। इस दोलायमान स्थिति का कारण सत्त्वगुण में प्रतिष्ठा की अक्षमता है। नैतिक जीवन यापन करना अपने आप में पर्याप्त नहीं है। सामान्य लौकिक नैतिकता में रजोगुण का मिश्रण रहता है, जो मानव की आध्यात्मिक अनुभूति में बाधा उत्पन्न करता है। जब मन का रजोगुण दूर हो जाता है और सत्त्वगुण का बाहुल्य होता है, तब मन परमात्मज्योति को प्रतिबिम्बित करता है। लेकिन सबसे पहले तो तमोगुण को दूर करना होगा। जब व्यक्ति में सच्ची आन्तरिक शक्ति हो। बहुत से लोग जिस शक्ति का बाह्य-प्रदर्शन करते हैं, वह प्राय: दुर्बलता को छिपाने के लिये होता है। एक सच्चे नैतिक व्यक्ति में महान् आन्तरिक शक्ति तथा स्फूर्ति होती है। वह तमोगुण पर विजय पाकर शान्त और प्रेमी स्वभाव का हो जाता है। लेकिन यदि यह अवस्था आध्यात्मिक अनुभूति न करावे, तो यह भी किसी काम की नहीं है। सामान्यत: वास्तविक नैतिकता मानव को अध्यात्म और मुक्ति की ओर ले जाती है। इसीलिए गीता में कहा गया है कि दैवी-सम्पद् मोक्षप्रदायक है, जबकि आसुरी सम्पद् बन्धनकारक होती है। मानव को एकमात्र आध्यात्मिक अनुभूति ही संपूर्ण मुक्ति प्रदान कर सकती है और नैतिकता उस दिशा में आवश्यक कदम है।

जिस मात्रा में हम एक शुभ जीवन यापन करने में सफल होते हैं, उसी मात्रा में नैतिक स्वाधीनता प्राप्त होती है। लेकिन आध्यात्मिक अनुभूति से ही पूर्ण तथा आत्यन्तिक मुक्ति प्राप्त की जा सकती है, जो सिद्ध पुरुष को अविद्या से मुक्त करती है। यही अविद्या सभी प्रकार के बन्धन और दु:खों का मूल कारण है।

बुद्ध का कथन है, ''निर्वाण लाभ होने पर ज्ञानी पुरुष पवित्रता में प्रतिष्ठित और मुक्त हो जाता है।'' जब ईसा मसीह ने यह कहा, ''और तुम सत्य को जानोगे और सत्य तुम्हें मुक्त करेगा।'' तब वे ज्ञान द्वारा प्राप्त मुक्ति की बात कर रहे थे। चीन के ताओ मतवादियों की एक पुरातन कहावत इस प्रकार है : ''सृष्टि के प्रारम्भ में परमात्मा जगत् की माता बन गये। जब मानव अपनी माता को जानेगा, तब वह यह ज्ञान भी जानेगा कि वह उसका पुत्र है। जब वह अपने पुत्रत्व को पहचानेगा, तब वह अपनी माता के निकट रहेगा और अपने जीवन के अन्त तक, खतरों से मुक्त रहेगा।''

स्वर्गसुख-प्राप्ति जीवन का लक्ष्य नहीं है :

स्वर्ग तथा भोग के अन्य लोकों की मान्यता हिन्दू-धर्म में बहुत प्रारम्भ से विद्यमान है। लेकिन मीमांसक नामक दार्शनिकों के एक अल्प समुदाय को छोड़कर और किसी के द्वारा वह जीवन का चरम लक्ष्य, परम पुरुषार्थ, नहीं माना गया है। मीमांसकों का विश्वास था कि योग और यज्ञ रूप

क्रियाकाण्ड द्वारा स्वर्ग में प्रवेश किया जा सकता है। अत: उन्होंने वैदिक कर्मकाण्ड को बहुत अधिक महत्त्व दिया है। लेकिन उपनिषदों, भगवद्गीता, शंकराचार्य की रचनाओं, श्रीमद्भागवतम् तथा शास्त्रों में हम स्वर्ग-सुखों की स्पृहा की कटु निन्दा पाते हैं। वैष्णव आचार्यों ने भी शिक्षा दी है कि स्वर्ग साधक का लक्ष्य नहीं होना चाहिए। उसके बदले सर्वव्यापी परमात्मा विष्णु का परमधाम (तद् विष्णो: परमं पदम्) साधक का लक्ष्य होना चाहिए।

मीमांसकों के मतानुसार जीव सत्य हैं और अनेक हैं तथा सुख भोग के लोक भी सत्य और अनेक हैं। मृत्यु के बाद जीव पृथिवी पर किये अपने कर्मों के अनुसार इन लोकों को जाते हैं। मीमांसक सर्वशक्तिमान ईश्वर में विश्वास नहीं करते और उनका लक्ष्य मोक्ष नहीं, अपितु स्वर्ग है, जिसे वे कर्मकाण्ड परक यज्ञों द्वारा जीतने की आशा करते हैं। निश्चय ही वे उपनिषद् प्रतिपादित उस अखण्ड सच्चिदानन्द ब्रह्म या आत्मा में विश्वास नहीं करते, जिसकी भ्रान्तर और बाह्य समस्त वस्तुएँ प्रातिभासिक अभिव्यक्तियाँ हैं।

कर्मकाण्ड का मार्ग अनुसरण करने से व्यक्ति कुछ पुण्य अवश्य अर्जित करता है। व्यक्ति ऊर्ध्व लोकों में जा सकता है, लेकिन उसे पुन: नीचे पतित होना पड़ेगा क्योंकि वे लोक भी अनित्य हैं। अनन्त स्वर्ग या अनन्त नर्क कभी नहीं हो सकते। समग्र दृश्यमान जगत् काल द्वारा नियन्त्रित हो रहा है और काल में ही प्रकट और विलीन होता है।

''यज्ञकर्ता यहाँ नीचे यज्ञों द्वारा देवताओं की उपासना करके स्वर्ग में जाता है। स्वयं द्वारा अर्जित स्वर्गसुखों का वह एक देवता की तरह उपभोग करता है। .....अपने पुण्य कर्मों के फल की समाप्ति तक वह स्वर्ग में सुख भोग करता है। उसके बाद पुण्यक्षय होने पर काल के द्वारा प्रेरित हो, अपनी इच्छा के विरुद्ध वह नीचे गिर जाता है।''

इहलोक तथा परलोक के सुखों का पीछा करने में अपनी शक्ति व्यर्थ नहीं गँवानी चाहिए। सच्चा वैराग्य वेदान्त के अधिकारी का एक अनिवार्य सद्गुण है। जब सभी सुखों के मूल भगवत्साक्षात्कार के नित्यपरमानन्द की प्राप्ति की सम्भावना विद्यमान है, तो फिर स्वर्ग के अनित्य सुखों के पीछे क्यों जाते हो, जो इहलोक के सुखों से अधिक भिन्न नहीं हैं? विभिन्न प्रकार के सुख होते हैं। प्रश्न यह है कि तुम किसका चयन करते हो। इस विषय में व्यक्ति को बिल्कुल स्पष्ट और निश्चित होना चाहिए। भोगासक्ति में सुख है और स्वर्गसुख भी है, लेकिन इन दोनों का अतिक्रमण करके आत्मा की मुक्ति को आनन्द प्राप्त करने में अधिक सुख है। सदा के लिये निर्णय कर लो कि तुम क्या चाहते हो। यदि तुम ईश्वरसाक्षात्कार और आध्यात्मिक जीवन का चयन करो, तो तुम्हें इहलोक और परलोक की सभी इच्छाओं का त्याग करना चाहिए। तुम्हें इस दिव्य त्याग के मार्ग की सभी कठिनाईयों और परीक्षाओं का सामना करने के लिये तैयार होना चाहिए।

इसका यह अर्थ नहीं कि व्यक्ति को समस्त कर्म त्याग देना चाहिए। कर्म में प्रेरित करने वाली भोगेच्छाओं का त्याग अधिक महत्त्वपूर्ण है। सभी कर्मों को कामना रहित होकर करना चाहिए। यही निष्काम कर्म है। इस तरह कर्म करने पर चित्त शुद्ध होगा और वह भगवान् का प्रकाश प्राप्त करने में सक्षम होगा। यदि तुम निष्काम कर्म न कर सको, तो कर्मफलों को परमात्मा को समर्पित कर दो। गीता में कहा गया है :

जिससे सभी प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे सब कुछ व्याप्त है, उसकी अपने स्वकर्मों से अर्चना करके मानव सिद्धि प्राप्त करते हैं।

अपने कर्मों से भगवान् की आराधना करो। यह आराधना के श्रेष्ठतम उपायों में से एक है। क्रिया-अनुष्ठान भी यदि एकमात्र भगवत्प्रीत्यर्थ किए जाएँ, तो उपयोगी होते हैं। बहुतों के लिये प्रारम्भिक अवस्था में वे आवश्यक हो सकते हैं। लेकिन उच्चतर प्रकार की उपासनाएँ भी हैं।

साधक को इन उच्चतर प्रकार की उपासनाओं को अंगीकार कर परमात्मा के निकट से निकटतर पहुँचना चाहिए। यदि तुम उच्चतर प्रकार की उपासना कर सकते हो, तो निम्नतर से क्यों संतुष्ट रहते हो?

फिर भी, एक बात ध्यान रखने की है। मीमांसकों के सूक्ष्म स्वर्गीय सुख, इस लोक में सामान्य लोगों द्वारा भोगे जा रहे स्थूल प्राकृत भोगों से निश्चित रूप से श्रेष्ठतर हैं। स्वर्ग सुख, भगवत्साक्षात्कार के सुख से निश्चय ही निम्नतर हैं तथा उसकी शास्त्रों में भले ही निन्दा की गई हो, लेकिन वह अनैतिकता तथा भ्रष्ट आचरण के कीचड़ में रेंगने से बहुत अच्छा है। मीमांसकों में धर्म का भाव प्रबल रहता है। वस्तुत: सभी हिन्दू दर्शन प्रणालियों की तुलना में उन्होंने ही नीतिशास्त्र की विशदतम व्याख्या प्रस्तुत की है। उनके अनुसार वैदिक विधि-निषेधों का पालन करना मानव का कर्तव्य है। मीमांसा दर्शन के सबसे महान् प्रणेताओं में से एक ने कर्म के लिये कर्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है और वैदिक आदेशों के पालन का उनका सिद्धान्त इमेन्युअल काण्ट के ''विवेक की आज्ञा'' या ''सर्वोपरि कानून'' के सिद्धान्त से अधिक भिन्न नहीं है। धर्म (सदाचरण) हिन्दू धर्म के सभी सम्प्रदायों में सदा एक नियंत्रणकारक घटक रहा है। हिन्दू धर्म में ईश्वर के भय को इतना महत्त्व नहीं दिया गया है, जितना धर्महानि के भय को दिया गया है। व्यक्ति धर्म के किसी भी नियम अथवा विधान का खण्डन करने में डरता है। प्रत्येक व्यक्ति को धर्म के विधान का पालन करना चाहिए। धर्माचरण विहीन व्यक्ति के लिये हिन्दू धर्म में कोई स्थान नहीं है। आध्यात्मिक प्रगति सम्पन्न व्यक्ति धर्म के कुछ स्थूल रूपों का अतिक्रमण भले ही करे, पर कोई भी उसके मौलिक सिद्धान्तों का हनन नहीं करता।

चरम मुक्ति वेदान्त का लक्ष्य है :

वेदान्त का लक्ष्य मुक्ति की उस अवस्था को प्राप्त करना है, जो जन्म और मृत्यु से परे है तथा जिससे पतित होने की सम्भावना नहीं है। मुक्ति हमारे देह और मन से, दूसरे शब्दों में हमारे झूठे व्यक्तित्व से, स्वयं को पृथक् करने पर ही प्राप्त की जा सकती है। भौतिक पदार्थों से पूर्ण अनासक्ति, वास्तविक मुक्ति है। वास्तविक आत्मा के अतिरिक्त और किसी पर निर्भरता बन्धन और दु:ख है। पूर्ण ज्ञानी पुरुष अपनी आत्मा पर ही निर्भर रहता है, और किसी पर नहीं, तथा आत्मानन्द का उपभोग करता है। वह आत्माराम-आत्मा में रमण करने वाला-कहलाता है। वह मन और इन्द्रियों के समस्त स्थूल तथा सूक्ष्म भोगों का अतिक्रमण करता है। ज्ञानी व्यक्ति के लिये स्वर्गसुख भी दु:ख ही है, क्योंकि वह इससे कहीं ऊँची स्वाधीनता और आनन्द की स्थिति का उपभोग कर चुका होता है। यह स्वीकार भी कर लिया जाए कि स्वर्ग सुख पार्थिव सुखों से श्रेष्ठतर है, फिर भी वे स्थायी नहीं होते और व्यक्ति को अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करने में समर्थ नहीं बनाते। इसीलिए सभी गम्भीर स्वभाव साधकों को यह सलाह दी जाती है कि वे स्वर्ग की इच्छा को आध्यात्मिक प्रगति में बाधक समझें। क्रिया-अनुष्ठानों के मार्ग का अवलम्बन करने के बदले साधक को वैराग्य, ज्ञान और भक्ति का अधिकाधिक विकास करना चाहिए।

मृत्यु तुम्हें ताक रही है और तुम भोगों की सोच रहे हो? माया की ऐसी शक्ति है कि हम अपना अमूल्य समय नाना प्रकार की अर्थहीन बातों में व्यर्थ गँवाते जाते हैं और मुक्ति के चरम लक्ष्य को भूलकर नये बन्धनों में बँधते जाते हैं। मछुए के जाल और मछलियों की श्रीरामकृष्ण-कथित लघुकथा का अर्थ स्पष्ट ही है। जाल से निकलने का रास्ता है, लेकिन बहुत कम मछलियाँ उसमें से बच निकल पाती है। शेष मछलियाँ गहरे कीचड़ में घुसकर समझती रहती हैं कि वे सुरक्षित और बड़े आराम में हैं। हमारा भी यही हाल है। मृत्यु के द्वारा पराभूत होने पर यह संसार, जिसे हम सुरक्षित स्थान समझते हैं, हमारी आँखों के सामने से गायब हो जाता है। मृत्यु से अनावश्यक रूप से भयभीत होने की

आवश्यकता नहीं है। लेकिन हमें उसकी सत्यता को विस्मृत करने की मूर्खता नहीं करनी चाहिए। यदि जीवन सत्य है, तो मृत्यु भी सत्य है।

हिन्दू धर्म में परित्राण का अर्थ है, जीव की समस्त दुःखों से मुक्ति। वह एक अविमिश्रित आनन्द की स्थिति है। पूर्ण मुक्ति और आनन्द की उस अवस्था में निवास करना अथवा उसकी प्राप्ति के लिये तीव्र प्रयास करना 'आध्यात्मिक जीवन' के नाम से अभिहित होता है। यह केवल मृत्यु के बाद प्राप्त होने वाली अवस्था नहीं है। उसकी उपलब्धि यहीं, इसी जगत् में हो सकती है। इस चिरस्थायी मुक्ति का लाभ करने वाला व्यक्ति जीवन्मुक्त कहलाता है।

चरम मुक्ति का उपाय – यथार्थ ज्ञान :

अगला प्रश्न है : इस सुखकारक, मुक्ति की अवस्था की अभी यहीं प्राप्ति में मानव की बाधा क्या है? भारतीय दर्शन की सभी शाखाएँ इस बात से सहमत हैं कि अविद्या मानव के बन्धन का काण है; अवश्य इस अविद्या के स्वरूप के विषय में विभिन्न मान्यताएँ हैं। अद्वैत वेदान्त के अनुसार एक सर्वव्यापी मूल अविद्या है, जो माया कहलाती है तथा जो ब्रह्म या सत्य को उसी तरह आवृत कर देती है, जिस तरह सूर्य को बादल। यही नहीं, यह माया अनन्त प्रकार के प्राणियों से युक्त इस विराट् जगत् को प्रक्षिप्त करती है। इसके कारण मानव यह नहीं जान पाता कि वह स्वरूपतः ब्रह्म है। अपने अस्तित्व के इस मूल तथ्य के अज्ञान के कारण ही ये समस्त दुःख, अशुभ तथा द्वैत और द्वन्द्व पैदा होते हैं। पुनः वेदान्त यह भी कहता है कि इस मूल अविद्या को ज्ञान के द्वारा ही नष्ट किया जा सकता है। इस सत्य ज्ञान की, सच्चिदानन्द ब्रह्म के साथ हमारे एकत्व के ज्ञान की, उपलब्धि ही वेदान्त में आध्यात्मिक जीवन कहलाती है। वेदान्त की द्वैत-प्रणालियों में भी जीव को परमात्मा के स्वरूप का ही माना गया है। द्वैतवादी वेदान्ती यह मानते हैं कि अपनी जीवत्व दशा में आत्मा का यथार्थ ज्ञान संकुचित अवस्था में रहता है। इसके फलस्वरूप उसके वास्तविक स्वरूप का तथा परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। साधना और भगवत्कृपा के द्वारा जीव विस्तार प्राप्त करता है और अधिकाधिक ज्ञानार्जन करता है।

तात्पर्य यह है कि वेदान्त के सभी सम्प्रदाय यह मानते हैं कि यथार्थ ज्ञान आत्मा का वास्तविक स्वरूप है। अद्वैत मत के अनुसार वह माया द्वारा आवृत रहता है और द्वैत मत के अनुसार वह संकुचित रहता है, बस, यही अन्तर है। इस वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति और अभिव्यक्ति के लिये किया गया प्रयास ही आध्यात्मिक जीवन है। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द ने धर्म को, ''मानव में पहले से विद्यमान देवत्व की अभिव्यक्ति'' की संज्ञा दी है। अपने अनुपम शब्दों में वे धर्म का सार इस प्रकार बताते हैं :

प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है। अन्तः प्रकृति और बहिः प्रकृति को वशीभूत करके आत्मा के इस ब्रह्म-भाव को व्यक्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है। कर्म, उपासना, मनःसंयम अथवा ज्ञान, इनमें से एक, एक से अधिक या सभी उपायों का सहारा लेकर अपना ब्रह्मत्व व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ। बस, यही धर्म का सर्वस्व है। मत, अनुष्ठान-पद्धति, शास्त्र, मंदिर अथवा अन्य बाह्य क्रिया-कलाप तो उसके गौण ब्यौरे मात्र हैं।

इस अव्यक्त ब्रह्मत्व या देवत्व को प्रकाशित करना मानव जीवन का मुख्य उद्देश्य है।

अतः यथार्थ ज्ञान अथवा प्रत्यक्षानुभूति हिन्दू धर्म में आध्यात्मिक जीवन का प्रमाण और मापदण्ड माना गया है। यह अपरोक्ष प्रज्ञाजन्य ज्ञान पुरुषार्थ अथवा भगवत्कृपा अथवा दोनों के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, लेकिन प्रत्यक्ष अनुभूति अथवा अपने वास्तविक स्वरूप के साक्षात्कार के बिना कोई भी पूर्ण मुक्ति और परमानन्द प्राप्त नहीं कर सकता, जो जीवन का लक्ष्य है। हिन्दू धर्म की सभी साधन पद्धतियाँ (जो योग कहलाती है) इस प्रत्यक्ष अनुभूति की प्राप्ति के लिये ही हैं। ***(क्रमशः)***

गतांक से आगे

मेरी साधना

लेखक - पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य-श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद-प्रोफेसर रूपसिंह लिम्बड़ी

अवतरण-21

मैं एक विचित्र सामञ्जस्य करना चाहता हूँ। आसक्ति रहित होकर सभी कर्मों को करना चाहता हूँ,-भोग-लिप्सा से निर्लिप्त रहते हुए सभी भोगों को भोगना चाहता हूँ,-बिना उन्मत्त हुए ऐश्वर्य-सुरा का छककर पान करना चाहता हूँ। मैं कीचड़ में जन्म लेकर भी, जल की सत्ता में निवास करके भी सदैव उसके धरातल से ऊपर उठा हुआ रहना चाहता हूँ। कमलापति भगवान विष्णु के करकमल का यही तात्पर्य है, विदेह-राज जनक के विदेहत्व का यही अर्थ है।

सुख भोग ऐश्वर्य का, समंदर छलकाय।
डूबूं नहीं तैर जाऊँ, विदेह राज मलकाय।।

ईशोपनिषद के प्रथम श्लोक एवं गीता के कर्मफल त्याग का भाव इस अवतरण में व्यक्त किया गया है। गीता में बताए गये स्थितप्रज्ञ के लक्षणों को इस अवतरण में प्रस्तुत किया गया है।

साधारणतया मनुष्य आसक्ति रहित नहीं हो सकता है। यहाँ साधक आसक्ति रहित होकर सभी कर्म करने की इच्छा व्यक्त करता है। साधक जो भी करना चाहत है उसमें अपना कर्तव्य कर्म ही देखता है। कर्तव्य कर्म में फल की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। वर्तमान में परिस्थिति यह है कि कोई भी थोड़ा-सा भी कार्य करता है तो ढिंढोरा पीटा जाता है। सन्मान समारोह का आयोजन किया जाता है। कर्तव्य कर्म वह होता है जिसको करना हमारा कर्तव्य है। हमारे ऊपर समाज का, जाति का ऋण है। कर्तव्य कर्म करने का मतलब है ऋण चुकाना। फिर उसमें फल की अपेक्षा कैसी? सन्मान लिया तो फिर दो-गुना ऋण हो गया। हमारे वर्तमान कार्यकर्ताओं को इस अवतरण को आत्मसात करना होगा।

वर्तमान युग भोगवादी युग है। मनुष्य भोग में पागल हो गया है। ऐसी स्थिति में साधक का संकल्प है कि मैं भोग लिप्सा से निर्लिप्त रहते हुए सभी भोगों का उपभोग करना चाहता हूँ। इसमें 'त्येन त्यक्तेन भुंजिथा:' का भाव है। हमारे यहाँ भोग का निषेध नहीं है परन्तु भोग विवेकाधीन है। भोग सामग्री का भोग करते वक्त विवेक बुद्धि का उपयोग करना है। हमें यह ध्यान में रखना है कि कहीं 'भोग' हमारा 'उपभोग' न कर ले। आज परिस्थिति ऐसा ही है-'भोगों न भुक्ते वयमेव भुक्ता'। इस कारण से ही सारा संघर्ष है।

साधक की प्रतिबद्धता पर थोड़ा विचार करें। वह क्या करता है? वह कहता है, बिना उन्मत्त हुए ऐश्वर्य सुरा का छककर पान करना चाहता हूँ। इसका क्या मतलब है? क्या सुरा पान (मादक-पदार्थों) का सेवन करने वाला उन्मत्त हुए बिना रह सकता है? ऐश्वर्य (वैभव-पद-प्रतिष्ठा-पैसा) में जितनी मादकता है उतनी मादक पदार्थों में नहीं है। यहाँ साधक चाहता है कि चाहे उसे तीन लोक का वैभव मिले, वह उसका आकण्ठ पान भी करे पर उन्माद की परछाई भी उसे छूने न पाये। वह जल-कमलवत रहने का संकल्प करता है। जो अपना कर्तव्य कार्य पूर्ण निष्ठा से करना चाहे उसे संसार की भोग लालसा में फंसे बिना कर्म करना है। संपत्ति-ऐश्वर्य-वैभव अपने आप में अनिष्ट नहीं, उनका विवेकहीन उपभोग ही अनिष्ट है। विदेहराज जनक के विदेहत्व का यही रहस्य है।

सार - *सरल बनें, सहज बनें, उपयोगी बनें।*
अहंकारी न बनें, उपभोगी न बनें।
यही जीवन का सही स्वरूप है।

अवतरण-22

जरा समझूँ भगवान के मंगलमय विधान को। विष्णु शक्ति का आह्वान करूँ। अमृत रूपी तत्त्वों की वृद्धि, पोषण और रक्षण में योग दूँ। उन्हें क्षय से बचाऊँ।

क्षत्रिय-संज्ञा को सार्थक करूँ। फिर मैं ही रूद्र बनकर विषरूपी तत्त्वों का संहार करूँ। मेरे प्रचण्ड आघातों से विप्लव का कलेजा फट जाए, कठोर हुंकारों से प्रलय का हृदय दहल उठे, सर्वनाश का महाताण्डवी दृश्य उपस्थित हो जाए। यह मेरे धर्म की प्रकृति है। इसे सोचूँ, समझूँ, अनुभव और धारण करूँ।

सूत्र क्षात्रधर्म का सार्थक करूँ।
दुष्ट दमन कर, सज्जन की रक्षा करूँ।।

भगवान के मंगलमय विधान को जरा समझूं, क्या है भगवान का मंगलमय विधान?

भगवान का मंगलमय विधान है, क्षत्रिय विष्णु शक्ति का स्वरूप है। इस विधान को समझने की बात साधक कर रहा है। यदि क्षत्रिय विष्णु शक्ति का स्वरूप है तो विष्णु शक्ति के गुण ही क्षात्रधर्म हो जाता है। विष्णु शक्ति के गुण क्या हैं? विष्णुशक्ति के गुण हैं 'पोषण और रक्षण'। हमारे शास्त्रों में भगवान के तीन स्वरूप का वर्णन है। ब्रह्मा-विष्णु-महेश। ये तीन अलग-अलग नहीं हैं। जब भगवान सृष्टि की रचना करते हैं तो उन्हें ब्रह्मा कहा जाता है। जब सृष्टि का रक्षण और पोषण करते हैं तो उन्हें विष्णु कहा जाता है। और जब सृष्टि में अनिष्ट वृतियाँ और प्रवृतियाँ बढ़ जाती हैं तब उन अनिष्टों का नाश करते हैं तो उन्हें महेश कहा जाता है। वास्तव में ये भगवान के अलग रूप नहीं हैं, भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये भिन्न-भिन्न नाम दिये गये हैं। वास्तव में भगवान एक ही हैं।

जब साधक विष्णु शक्ति का आह्वान करना चाहता है तो इसका मतलब है कि वह विष्णु शक्ति के माध्यम से संसार के जीव मात्र का पोषण और रक्षण करने का उत्तरदायित्व निभाने का सामर्थ्य प्राप्त करना चाहता है। क्षत्रिय का यही क्षात्रधर्म है, यही कर्तव्य है। क्षत्रिय होने का अर्थ है सृष्टि का रक्षण और पोषण करना। संसार में जो शुभ है, अमृत है उसके पोषण और रक्षण का उत्तरदायित्व क्षत्रिय का है। क्षत्रिय का प्रत्येक कार्य उसी उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिये होना चाहिए। क्षत्रिय क्षात्रकर्म, क्षात्रधर्म के भाग रूप संसार में जो भी शुभ है, अमृत तत्त्व है उसके पोषण, वृद्धि और रक्षण के लिये कार्य करता है। आज हमारे समक्ष यह प्रश्न है कि क्या हम शुभ, अमृत, सत्य, न्याय और नीति की वृद्धि के लिये कुछ करते हैं? ऐसा करने वालों को सहयोग देते हैं? हमारे लिये सोचने का प्रश्न है कि हम जो गौरव ले रहे हैं, क्या उसके हम अधिकारी हैं? वह पात्रता हम में है?

साधक चाहता है, वह 'क्षत्रिय-संज्ञा' को सार्थक करे। 'क्षत्रिय-संज्ञा' को सार्थक कैसे किया जा सकता है? प्रथम तो विष्णु शक्ति का आह्वान करके इसके द्वारा जो अमृत तत्त्व है, शुभ तत्त्व है, कल्याणकारी है, सत्य है, न्याय और नीतिपूर्ण है, करुणा, प्रेम और सदाचार पूर्ण है, उन सबकी रक्षा करना, उनकी वृद्धि करना और फिर इनकी वृद्धि में जो भी बाधक तत्त्व है, जो इसके विनाश का प्रयत्न हो रहा है उसका नाश करना होगा। तब जाकर 'क्षत्रिय संज्ञा' सार्थक हो पायेगी।

वर्तमान समय बहुत ही विलक्षण है। आज शुभ और अशुभ ऐसे घुल मिल गये हैं कि उसे परखना, पहचानना मुश्किल हो गया है। धार्मिक, सामाजिक और राजकीय प्रवृत्तियों के आवरण में न जाने कितने अशुभ पल रहे हैं। अमृत की आड़ में विष पनप रहा है। रावण यदि रावण के रूप में आता तो सीताजी धोखा नहीं खाती, किन्तु जब वह साधु बनकर आया तो धोखा खा गयी। आज भी ऐसे लोग हैं जो साधु का, सज्जन का मुखौटा पहनकर लोगों को छलते हैं। समाज में धार्मिक, सामाजिक, सेवा-संस्थाओं की आड में अनेक अशुभ एवं अनाचार की प्रवृत्तियाँ चल रही हैं। इन सब अकल्याणकारी एवं दुराचारी प्रवृत्तियों पर नियंत्रण करने का सामर्थ्य विष्णुशक्ति में ही है। और संसार में इस विष्णुशक्ति का माध्यम है क्षत्रिय। क्षात्रधर्म की यह प्रकृति है, उसमें प्रचण्ड शक्ति है, इस बात को समझाने को साधक कहता है-'मेरे प्रचण्ड आघातों से विप्लव का कलेजा फट जाए, कठोर हुंकारों से प्रलय का हृदय दहल उठे' इन शब्दों से साधक

क्षत्रिय शक्ति का, उसके आघात-हुंकारों से मिलने वाले परिणामों का शब्द चित्र प्रस्तुत करता है।

यहाँ साधक हमें अपने क्षात्र-स्वभाव की स्मृति कराता है। बरसों की अक्रियता के कारण हम अपने कर्तव्य को भूल गये हैं। हमारी अपनी स्वयंमेव मृगेन्द्रता की सहज प्रकृति हम भूल बैठे हैं। विप्लव और प्रलय शब्द सुनकर ही कायर भयभीत हो जाते हैं। इन शब्दों का क्रियात्मक रूप देखिये-महाभारत के युद्ध में जब कौरवों द्वारा रचित 'सप्त कोठा' युद्ध व्यूह रचना को छिन्न-भिन्न करता हुआ प्रलय की तरह बढ रहा है, उसे देखकर दुर्योधन उसे रोकने का व्यर्थ प्रयत्न करता है तो आचार्य द्रोण कहते हैं- ''बार-बार मैं तुम्हें समझाता हूँ फिर भी मूर्ख! तुम माने नहीं हो, यह बाल कुमार अभिमन्यु प्रलय बनकर तुम्हारे हजारों योद्धाओं का नाश कर रहा है, अनेकों को यम-सदन भेज दिए हैं, फिर भी तुम पागल होकर दौड़ते जा रहे हो। देखते नहीं सुभद्रा पुत्र महाकाल की तरह छा गया है।'' इस तरुण कुमार अभिमन्यु का ताण्डव देखकर स्वयं द्रोण जैसे सेनापति भी भयभीत हो गए हैं। यह है विष्णुशक्ति के माध्यम क्षत्रिय। हम इष्ट देव से प्रार्थना करें अपने 'क्षत्रिय' 'क्षात्रत्व' की यथार्थता पुन: स्थापित करने का हमें सामर्थ्य दे।

सार- *जानो, जानो यह ईश का इशारा है,*
समय अनमोल है, ईश को पाना है।।

चिंतन- देश, जाति और समाज की प्रगति के लिये इतिहास का अध्ययन, अनुशीलन आवश्यक है। परन्तु उचित संस्कारों के अभाव में हमारे युवाओं को इतिहास की उपेक्षा की आदत हो गयी है। उनकी मान्यता हो गई है कि बीते हुए युग की बातें भविष्य की प्रगति में बाधक हैं।

अवतरण-23

मैं सुनता क्यों नहीं इस पुकार को! देखो-कितनी असहायता, कायरता, दीनता, विवशता और वेदना है! इसमें मेरा सोया वीरत्व जाग उठे,-प्रलयकालीन मेघ की भाँति मैं गर्जन कर उठूँ-देश की सीमाओं का अतिक्रमण कर, परिस्थिति-बन्धनों को तोड़कर, काल के कुचक्र की अवहेलना कर, दुष्कर्म कर्ता का संहार करूँ, क्षात्रधर्म के औचित्य और उसकी आवश्यकता का सिक्का जमाऊँ,-उसके देश, काल और परिस्थिति-निरपेक्षता के स्वभाव को सत्य सिद्ध करूँ। हुतात्मायें मेरी सहायता करें।

जनता बेचारी विवश हो भटक रही।
आँसू पोंछे कौन? आर्त पुकार कसक रही।।

साधक अपने आपसे प्रश्न कर रहा है-'मुझे क्यों पुकार सुनाई नहीं देती?' कौन पुकार रहा है? किसे पुकार रहा है? क्यों पुकार रहा है? समाज का जो वर्ग निर्बल है, दीन है, असहाय है, जब बलवान वर्ग, दुष्ट लोग उन्हें प्रताड़ित करते हैं, पीड़ा देते हैं, तो वे अपनी रक्षा के लिये आर्तनाद करते हैं, अपने रक्षकों का आह्वान करते हैं। कौन है उन बेसहारों का सहारा? 'क्षतात् त्रायते इति क्षत्रिय' वह है क्षत्रिय। प्रजा को भयमुक्त करना, संकट समय में सहाय करना, पुकारने पर बेबसी से बचाना क्षात्रधर्म है। कवि गंग की उक्ति है-

रीड पड़े रजपूत छुपे नहीं।
दाता छुपे नहीं घर मांगन आये।।

(रीड=आर्तनाद, पीड़ा की पुकार)

यह है क्षात्र जीवन। जब हम क्षत्रिय शासक थे तब तो हमारा खाना-पीना, सोना जागना, सब घोड़ों की पीठ पर ही होता था। अब लोकतंत्र, प्रजाकीय शासन प्रणाली में भी हम अपने क्षात्रधर्म का पालन करने में सदैव तत्पर रहते हैं। इसके प्रमाण मौजूद हैं। सन् 1994 में अहमदाबाद में कौमी हुल्लड़ हुआ था। किसी भी तरह पुलिस शान्ति स्थापित करने में सफल नहीं हो पा रही थी। अहमदाबाद में एक ऐसा विस्तार है जहाँ दोनों कौमों के मोहल्ले आमने-सामने हैं। वहाँ एक रात को चारों ओर अंधेरा कर दिया गया था और हमले हो रहे थे। औरतें और बच्चे चिल्ला रहे थे। करुणा और दया के लिये, अपने रक्षण के लिये पुकार रहे थे। ठीक उस समय लिम्बड़ी (जिला-

सुरेन्द्रनगर) के एक छोटे गाँव के क्षत्रिय कुमार महेन्द्रसिंह राणा उस विस्तार में पी.एम.आई. की ड्यूटी पर से घर जा रहे थे। ड्यूटी पूरी हो गई थी। परन्तु उन्होंने जब बच्चों-औरतों की पुकार सुनी तो वे सीधे उनके बीच पहुँच गये। विस्तार विधर्मियों का था। बड़ा जोखिम था। उनके अन्य सहकर्मी पुलिस अफसरों ने उन्हें रोका, कहा-'राणा साहस न करो। आपकी ड्यूटी पूरी हो गई है, आप निकल जाइए।' लेकिन यह क्षत्रिय युवा ऐसी हालात में प्रजा को बेसहारा कैसे छोड़ सकता है? नजदीक के मकान की छत पर जाकर उसने हमलावरों को चेतावनी दी। पर उनमें से किसी ने गोली दाग दी। इस वीर जवान ने गोली लगने पर भी मोर्चा संभाला और हमलावरों को तीतर-बीतर करते हुए शहीद हो गया। उनकी स्मृति में उस विस्तार में आज उनका स्मारक खड़ा है। हर साल उनकी पुण्यतिथि पर उस विस्तार के लोग बाल, वृद्ध, महिलाओं सहित एकत्रित होकर उन्हें श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं। जब उनका स्मारक बनाया, पूरे विस्तार के युवाओं ने अपने आप मुण्डन करवाया था। गेडी गाँव (तह. लीम्बड़ी) में भी उनका स्मारक बनाया गया है। स्व. श्री महेन्द्रसिंह राणा के इस बलिदान ने गुजरात पुलिस का सिर ऊँचा कर दिया।

इस अवतरण में साधक जो कहना चाहता है उसे ठीक तरह से समझने के लिये यह उदाहरण दिया गया है। क्षात्रधर्म की कोई सीमा नहीं है। जहाँ कहीं प्रजा पीड़ित है, वह उसका कार्यक्षेत्र है। क्षत्रिय देश काल के बन्धनों से परे होता है। संसार के किसी भी कोने में से पीड़ितों की पुकार उठती है, वहाँ प्रलय की तरह छा जाना ही क्षत्रिय का धर्म है, कर्म है। आततायिओं, अत्याचारियों एवं अनीतिकारियों का दमन करना, नाश करना ही उसका कर्तव्य है।

साधक की यह अपेक्षा है कि हम क्षत्रिय जहाँ कहीं हैं और हमारे आस-पास में जब भी किसी बेबस को, निर्बल को, पीड़ित को किसी सहायता की आवश्यकता हो तो अपनी क्षमता और सामर्थ्य से सहाय करना हमारा धर्म है। आज सभी जगह बन्दूक, तीर, तलवार, भालों की जरूरत नहीं होती है। मारने-मरने की बात नहीं है परन्तु निर्बल परिवार को कोई कष्ट दे रहा हो तो उसकी सहायता करना, उसकी पीड़ा को मिटाना हमारा कर्तव्य है। हम जिस किसी भी क्षेत्र में कार्यरत हैं, यदि वहाँ किसी को व्यर्थ में परेशान किया जा रहा हो तो उसकी परेशानी को यथासंभव दूर करना आज का हमारा युगधर्म है। हम उन हुतात्माओं से प्रार्थना करें, वे हमें बल दें।

सार- निर्बलों की रक्षा हमारे लिये प्रभु प्राप्ति का साधन है। यही हमारी साधना है।

अवतरण-24

देखो! मेरे लिये स्वर्ग के द्वार खुले हैं, अप्सरायें वरमाला लिए हुए प्रतीक्षा कर रही हैं मुझे वरण करने को। धर्म युद्ध का दुर्लभ और अमूल्य अवसर उपस्थित हुआ है। मेरा परम सौभाग्य है! तो विरोचित रूप से मृत्यु का आलिंगन कर जीवन के अमरत्व को सहज ही में क्यों न प्राप्त कर लूँ। एक क्षत्रियोचित मृत्यु लाखों जीवनों से श्रेयस्कर है पर लाखों जीवन एक ऐसी मृत्यु बिना व्यर्थ हैं-ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार एक सूर्य के बिना समस्त ग्रह और नक्षत्र-मण्डल। इस सत्य को न भूलूँ।

धर्म युद्ध में मरने की है स्पर्धा।
मरकर अमर होने की है स्पृहा।।

धर्मयुद्ध, स्वर्ग, अमरत्व, अप्सरावरण ये सब एक दूसरे से प्राचीनकाल से लगे हुए हैं। गीता में अर्जुन को धर्मयुद्ध के लिए प्रेरित करने के लिए श्रीकृष्ण ने कहा-'यदि विजयी हुआ तो पृथ्वी के राज्य का भोग मिलेगा, यदि मृत्यु हुई तो स्वर्ग की प्राप्ति होगी।' धर्मयुद्ध का क्या मतलब है? महाभारत के युद्ध में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। गीता के प्रथम श्लोक का प्रथम शब्द 'धर्मयुद्ध' है। महाभारत का युद्ध धर्म युद्ध था। भारत और चीन का युद्ध 1962 में हुआ। वह धर्मयुद्ध नहीं था। भारत और पाकिस्तान का युद्ध 1965 में हुआ था, वह भी धर्मयुद्ध नहीं था। अमेरिका और कोरिया का, इजरायल और अरब

(शेष पृष्ठ 24 पर)

सब अपनी-अपनी जगह महान् हैं

- स्वामी विवेकानन्द

एक समय की बात है। एक राजा थे। जो भी संन्यासी उनके दरबार में आते वे उनसे पूछते थे, ''कौन महान् है-जो घरबार छोड़कर संन्यासी हो गया है या जो संसार में रहकर अपने गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यों का पालन करता है?'' कई विद्वानों ने उन्हें उत्तर देने का प्रयत्न किया, पर वे किसी से संतुष्ट न हुए। कोई संन्यासी को महान् बताता और कोई गृहस्थाश्रम का पालन करने वाले को महान् बताता, पर राजा तो उसका प्रमाण चाहते थे। जब वे उन्हें संतुष्ट न कर पाते तो राजा उन्हें दण्ड देते।

अंत में एक संन्यासी उनके दरबार में आए जो बड़े ही सौम्य एवं निर्भीक प्रतीत होते थे। उन्होंने कहा, ''राजन्! मैं आपके प्रश्न का उत्तर देने के लिये उपस्थित हूँ।'' सहसा सारे दरबार में निस्तब्धता छा गई और सब दरबारी शान्त होकर कौतहूल पूर्वक उत्तर की अपेक्षा करने लगे। राजा कुछ देर मौन रहे फिर धीरे से स्पष्ट शब्दों में बोले, ''मुनिवर्! क्या आप मेरी शर्त जानते हैं? यदि आप प्रमाणित करने में असफल हुए, तो आपको सजा दी जायेगी।''

''मैं जानता हूँ,'' संन्यासी ने उत्तर दिया। ''अच्छा तो हमें बताइये कि कौन बड़ा है संन्यासी या गृहस्थ?''

''राजन्! दोनों ही अपने-अपनी जगह महान् हैं।'

''कृपया इसे सिद्ध कीजिए।''

''मैं इसे सिद्ध कर सकता हूँ, पर आपको कुछ दिन मेरे साथ रहना पड़ेगा।''

राजा सहमत हो गए और तुरन्त संन्यासी के पीछे-पीछे अपना राज्य छोड़कर चल दिये और चलते-चलते कई राज्यों से गुजरे तथा अंत में किसी राज्य की राजधानी में पहुँचे। वहाँ उन्हें ढोल-नगाड़ों की ध्वनि सुनाई दी और साथ ही साथ लोगों की आवाज सुनाई पड़ी। लोग सड़कों पर कीमती वस्त्र पहने इकट्ठे हुए थे और कोई महत्त्वपूर्ण घोषणा की जा रही थी। राजा और संन्यासी वहाँ रुककर वहाँ की कार्यवाही को बड़े ध्यान से देखने लगे। यह घोषणा की जा रही थी कि राज्य की राजकुमारी की स्वयंवरसभा होने जा रही है।

यह भारत की पुरानी परम्परा रही है कि राजकुमारी अपने वर का चुनाव राजकुमारों की सभा में करती थी। राजकुमारी को एक डोली में बैठाकर सभा मंडप में चारों ओर ले जाया जाता था। यदि उसे कोई राजकुमार पसंद आता तो वह फूलों की माला उसके गले में डालकर उसे अपना पति बना लेती थी।

राजकुमारी डोली में बैठकर आयी और कहार उसे जगह-जगह घुमाने लगे। ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे उसे किसी की परवाह नहीं है। क्या यह सभा व्यर्थ साबित होगी?

उसी वक्त वहाँ एक सुन्दर और तेजस्वी संन्यासी आया और ऐसा लगा मानो सूर्य पृथ्वी पर उतर आया हो। वह उस सभा में एक कोने में चुपचाप खड़ा होकर वहाँ की गतिविधियों को देखने लगा। जब राजकुमारी की डोली उसके सामने आयी उसे देखते ही राजकुमारी ने वरमाला उसके गले में डाल दी।

पहले तो संन्यासी कुछ सकपकाया, फिर उस माला को गले से निकालकर फेंकते हुए कहा, ''यह क्या बेवकूफी है? मैं एक संन्यासी हूँ। मेरे लिये विवाह का क्या महत्त्व?''

उस राज्य के राजा ने सोचा कि शायद यह आदमी गरीब है और राजकुमारी से विवाह करने का साहस नहीं कर पा रहा है। राजा ने उससे कहा, ''मेरी बेटी के साथ इसी वक्त मेरा आधा राज्य भी अभी मिलेगा और मेरी मृत्यु के बाद सारा राज्य।'' और फिर वह माला उस संन्यासी के गले में दुबारा डाल दी।

उस नौजवान संन्यासी ने पुन: माला को निकाल फेंका और बोला, ''क्या बकते हो! मैं शादी नहीं करना चाहता'' और सभा के बाहर निकल गया।

वह राजकुमारी इस नौजवान से बेहद प्यार करने लगी थी और बोली, ''मैं यदि शादी करूंगी तो इसी से अन्यथा अपना प्राण त्याग दूँगी'' और उसे वापस लाने के लिये उसके पीछे-पीछे चल पड़ी।

फिर वह दूसरा संन्यासी, जो राजा को अपने साथ यहाँ लाया था, राजा से बोला, ''राजन्! चलो हम इस जोड़े के पीछे-पीछे चलें।'' और वे भी उनके पीछे हो लिए। वे उनके और अपने बीच काफी फासला रखकर चल रहे थे। वह संन्यासी, जिसने शादी से इन्कार कर दिया था, शहर से बाहर कई मील दूर निकल गया। जब वह एक जंगल के पास पहुँचा, तो घने जंगल में प्रवेश कर गया और राजकुमारी उसका पीछा करती रही, पर कुछ ही देर बाद वह रास्ता भूल गयी और रोने लगी। फिर हमारे राजा और संन्यासी जो उसके पीछे-पीछे चल रहे थे उसके पास आए और बोले, ''मत रोओ बेटी! हम तुम्हें इस जंगल से बाहर निकलने का रास्ता दिखाते हैं। पर इस वक्त उस रास्ते पर चलना असम्भव है क्योंकि घोर अँधेरा छा गया है। यहाँ एक बड़ा-सा पेड़ है, चलो इसी के नीचे विश्राम कर लें और सुबह होते ही हम जल्दी उठकर तुम्हें रास्ता दिखा देंगे।''

उस पेड़ पर एक छोटा-सा पक्षी अपनी पत्नी और तीन नन्हें-नन्हें बच्चों के साथ घोंसला बनाकर रहता था। जब उस पति ने नीचे उन तीनों व्यक्तियों को देखा तो अपनी पत्नी से कहा, ''प्रिये! अब हम क्या करें? यहाँ हमारे घर में कुछ मेहमान आए हैं और सर्दी का समय है तथा हमारे पास आग भी नहीं है।'' यह कहकर पक्षी वहाँ से उड़ गया और कहीं से जलती हुई लकड़ी उठाकर उसने अपने अतिथियों के सामने गिरा दी। उन व्यक्तियों ने कुछ और लकड़ियाँ और पत्ते डालकर बड़ी सारी आग जला ली। फिर भी उस पक्षी को संतोष न हुआ। वह फिर अपनी पत्नी से बोला, ''प्रिये! इन लोगों के लिये कोई भोजन नहीं है, ये बेचारे भूखे हैं। हम गृहस्थ हैं, यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम घर आए मेहमान को भोजन कराएँ। मैं इस अग्नि में कूदकर अपनी जान दे देता हूँ।'' उन लोगों ने उस पक्षी को गिरते देख उसे बचाने का प्रयास किया पर वह इतनी तेजी से गिरा था कि वे उसे बचा नहीं सके।

उस छोटे से पक्षी की पत्नी ने अपने पति की क्रिया को ध्यान से देखा। उसने कहा, ''यहाँ तीन व्यक्ति हैं और उनके खाने के लिये एक छोटा-सा पक्षी तो काफी नहीं। पत्नी होने के नाते मेरा यह कर्त्तव्य है कि अपने पति के बलिदान को व्यर्थ न जाने दूँ, क्यों न उन्हें अपना भी माँस खाने को दे दूँ।'' ऐसा कहकर उसने भी अग्नि में कूदकर अपनी जान दे दी।

फिर उन तीन छोटे-छोटे बच्चों ने सारी हरकत देखी और सोचा कि अब भी उन तीन व्यक्तियों के लिये पर्याप्त भोजन नहीं है, तो एक-दूसरे से बोले, ''हमारे माता-पिता ने, जितना उनसे बना, किया पर फिर भी कम पड़ गया। हमारा यह कर्त्तव्य है हम अपने माता-पिता के पदचिन्हों पर चलें। चलो, हम भी अपना बलिदान कर देते हैं।'' फिर उन बहादुर नन्हें पक्षियों ने अग्नि में छलांग लगा दी।

वे लोग यह सब कुछ देखकर स्तम्भित हुए और वे उन पक्षियों के माँस को न खा सके। उन्होंने भूखे ही रात बिताई और सुबह होते ही राजा और संन्यासी ने राजकुमारी को रास्ता दिखाया और वह वापस अपने पिता के घर लौट गई।

फिर वह संन्यासी राजा से बोला, ''राजन्! तुम्हें अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया। मैंने तुमसे कहा था और तुमने देख भी लिया कि हर एक अपनी-अपनी जगह महान् हैं। यदि तुम गृहस्थ होना चाहते हो तो उन पक्षियों की तरह दूसरों के लिये अपने जीवन का बलिदान देने के लिये तैयार रहो और तुम यदि निवृत्ति का मार्ग चाहते हो तो, उस संन्यासी की तरह सौंदर्य, पैसा, ऐश्वर्य इत्यादि से अपना मुँह मोड़ लो।''

शिक्षा : प्रत्येक आदमी अपने स्थान में बड़ा है, लेकिन एक का कर्त्तव्य दूसरे का कर्त्तव्य नहीं होता।

*

महारावल जैसलदेव जी

– रतनसिंह बडोड़ागाँव

महारावल दुसाज जी के ज्येष्ठ कुँवर होने के बावजूद जैसल जी को राजगद्दी से वंचित रखा गया परन्तु अपने अनुज-पुत्र भोजदेव जी की मृत्यु के बाद वे लुद्रवा में महारावल बने। जैसल जी ने अनुभव किया कि, समतल भूमि पर बना लुद्रवा का किला सुरक्षित व अभेद्य नहीं है, क्योंकि वह तीन दिन में ही टूट गया था। अत: उन्होंने अन्यत्र मजबूत व सुरक्षित किला बनाने का निश्चय किया। मोलासर की पहाड़ी पर कार्य शुरू भी करवाया परन्तु 120 वर्षीय पुष्करणा ब्राह्मण ईसा ने उन्हें बताया कि, भगवान श्री कृष्णचन्द्रजी व पाण्डव अर्जुन द्वारिका लौटते समय इस गोरहरे की पहाड़ी पर विराजे थे। अर्जुन को प्यास लगने पर भगवान ने सुदर्शन चक्र से एक कुआँ खोदा और अर्जुन से कहा कि, किसी काल में मेरे वंशज यहाँ दुर्ग बनाकर राज कायम करेंगे। ईसा ने महारावल जी को एक शिला दिखाई जिस पर लिखा था –

जैसल नामा भूपति यदुवंशी इक थाय।
कोई काल रे अंतरै एथ रहेसी आय।।

– तवारिख जैसलमेर

लुद्रवा हूंती ऊगमण पंच कोसे मांम।
ऊपाड़ै ओमंड ज्यो तिण रह अमर नाम।।

– मुंहणोत नैणसी री ख्यात

महारावल जैसलजी ने संवत् 1212 श्रावण सुदी 12 रविवार मूल नक्षत्र को लुद्रवा से बारह किलोमीटर दक्षिण-पूर्व में स्थित गोरहरे की पहाड़ी पर गढ़ की नींव दी जिससे यह गढ़ गोरहरा कहलाया। संवत् 1219 में जैसलजी ने इस वर्तमान की जैसलमेर नगरी को अपनी नई राजधानी बनाया।

दोहा

काशी, मथुरा, प्राग्वड़, गजनी अरू भटनेर।
दुगम, देरावल, लुद्रवा नवां जैसलमेर।।

चौपाई

बारह सौ बारोतरे सावण मास सुदेर,
जैसलमेर थाप्यो जोरवर महिपत जैसलमेर।
लंका ज्यु अगजीत है घणा थाट रे घेर,
रिधु रहीसी भाटियां मही पर जैसलमेर।

छप्पय

बरह सौ बारोतरे कियो जैसलमेर जैसलगिरी,
ईसा वरस सोवनमेर मंडयो मेरावर,
सुद सावण बारस मूल नक्षत्र रविवार,
पृथ्वी में प्रगट्यो त्रिकूट गढ़ लंका कारे,
तहां छेद न भेद लगे नको, सुख निवास यादव रहै।
पृथ्वीय गढ़ शृंगार ए, देखेय दुर्जन उदहे।।

महारावल जैसलजी ने सुशासन स्थापित कर राज्य में शान्ति कायम की।

एक बार की बात है, चांनीया व बलोच जनता में लूट मार करने के इरादे से विशाल सैन्य टुकड़ी के साथ खुहड़ी गाँव की तरफ बढ़ आए। गुप्तचर व्यस्था दुरूस्त होने के कारण महारावल जी को समय पर सूचना प्राप्त हो गई। वे स्वयं घोड़े पर सवार होकर सैन्य दल के साथ खुहड़ी पहुँचे और हमलावरों को ललकारा। आपसी मुठभेड़ में कटक का मुखिया मारा गया व अन्य को घेर कर पकड़ लिया गया। सभी ने मुँह में घास पकड़ कर क्षमा याचना कर दया की भीख माँगी। दयालु महारावल जी ने उन्हें क्षमा करके अभय दान दिया।

'जैसलमेर री ख्यात' के अनुसार जैसलजी के गढ़ों की विगत- 1. गढ़ श्री जैसलमेर, 2. देरावर, 3. तणोट, 4. बिकमपुर, 5. रोहड़ी, 6. भक्खर, 7. घोटाड़ु, 8. फलोदी, 9. खावड़, 10. मारोठ, 11. सातल, 12. नोहर, 13. चोहटन, 14. पूंगल, 15. बाहड़मेर, 16. नाचणों, 17. जूनोगढ़।

स्वर्ण नगरी जैसलमेर का किला–त्रिकूटगढ़

स्वर्ण प्रस्तर से जड़ा, यह दृढ़ गढ़ जैसण का।
दे रहा परिचय सदा से, भाटियों की आण का।।

महारावल जैसलदेव जी ने संवत् 1219 में यहाँ अपनी राजधानी कायम की। अत: यह 'जैसलमेर' कहलाया। जैसलमेर दुर्ग को ढाई शाकों का गौरव प्राप्त है। धान्वन श्रेणी का यह दुर्ग 250 फीट (76 मीटर) ऊँची त्रिकोणी पहाड़ी पर बना हुआ है, अत: यह तिखुणा कोट या त्रिकूटगढ़ भी कहलाता है। दुर्ग का परकोटा तीन किलोमीटर लम्बा है, इसके चारों ओर तीन से पाँच मीटर की ऊँचाई तथा दो से तीन मीटर की मोटाई वाली दीवार है जिसके मध्य घुमावदार 99 बुर्ज हैं जो सुरक्षा मोर्चों का काम करते थे, बलखाते सांप की तरह बनी बुर्जाकार दीवारों के ऊपर विशाल बेलनाकार व गोल पत्थर रखे हुए हैं, जो उस युग में दुर्ग की रक्षा के लिये हथियार का काम करते थे। किले का दोहरा परकोटा कमरकोट नाम से जाना जाता है, इसे बनाने में चूने का प्रयोग नहीं किया गया है। यह दुर्ग जैसलमेर के विशाल पीत पाषाणों से बना हुआ है। जब प्रात:काल में सूर्य की किरणें इस किले पर पड़ती है तो यह अपनी स्वर्णिम आभा बिखेरते हुए सोने का प्रतीत होता है। उत्तरी सीमा का यह प्रहरी इसलिए सोनारगढ़ भी कहलाया है।

सूरज पूछे सारथी, भू पर किसड़ो भाँण।
जूंझारो यदुवंश रौ, चमकै गढ़ जैसाण।।

घाघरानुमा परकोटे वाला यह किला लंगर डाले हुए जहाज की तरह दिखाई देता है। यह किला चित्तौड़गढ़ के बाद सबसे बड़ा लिविंग फोर्ट है, इस रिहायशी किले में पाँच सौ परिवार निवास करते हैं। किले के निर्माण का प्रथम चरण महारावल जैसलदेव जी के पुत्र व उत्तराधिकारी शालिवाहन जी ने पूर्ण करवाया। प्रथम व द्वितीय शाकों के दौरान दुर्ग को भारी क्षति पहुँचायी गयी परन्तु बाद के शासकों ने किले की मरम्मत व विस्तार कार्य को जारी रखते हुए इसे भव्यता प्रदान की। यह किला यूनेस्को द्वारा विश्व धरोहर घोषित किया गया है।

यह दुर्ग हमारी आन, बान और शान का जीवन्त प्रतीक है जो सदियां से हमारे इतिहास का साक्षी ही नहीं बल्कि उसका नायक रहा है। आज भी गौरव से सीना ताने हमारा स्वागत करने को आतुर है। आइये! हम चलकर इस पावन दुर्ग के दर्शन कर स्वयं को कृतार्थ करें।

जैसलमेर के किले में प्रवेश के दौरान पूर्व दिशा में प्रथम द्वार अखे (अक्षय) प्रोल आगन्तुकों का स्वागत करती है, जिसका निर्माण महारावल अखेसिंहजी ने सन् 1739 ई. में करवाया था। अन्दर दांयी ओर हाथियों का स्थान था तथा खूणेवाला व रामदेसर कूप भी यहीं स्थित है। आगे बढ़ने पर बायीं ओर बाबा रामदेवजी का मंदिर है। दायीं ओर बेरीशाल बुर्ज दिखाई देता है। यहीं पास में जूंझार चबूतरा है। प्रथम शाके में वीरगति को प्राप्त होने वाले महारावल मूलराज जी व उनके अनुज रतनसी जी के खण्डित गोरधन स्तम्भ है। पास में पुरानी जेल व देवी का एक मंदिर तथा रणछोड़ जी का मन्दिर है। यह मन्दिर लक्ष्मीनाथ जी के मन्दिर के साथ पंचायत (पंचतीर्थ) मन्दिरों की गणना में आता है। दक्षिणाभिमुखी सूरज प्रोल में प्रवेश के पश्चात् घुमाव में एक ऊँचे चबूतरे पर गोलाकार सूर्य की प्रतिमा रखी है। आगे है गणेश पोल अथवा आदि प्रोल जिसका निर्माण सबसे पहले महारावल जैसलदेव जी ने करवाया था। आगे चढ़ने पर हवा प्रोल अपने नाम के अनुरूप ठण्डी व ताजगी भरी हवा से हमें राहत पहुँचाने को आतुर नजर आती है। प्रोल के दाहिनी ओर के झरोखे में रणभेरी रखी जाती थी।

हवाप्रोल से निकल कर हम दाहिनी ओर स्थित दशहरा चौक में पहुँचते हैं। यहाँ दीवान ए आम हेतु सीढ़ियाँनुमा बैठक व विशाल चबूतरे पर महारावल के लिये सुन्दर संगमरमर की कुर्सी बनी हुई है। यहाँ रियासत काल में दशहरा व गणगौर आदि उत्सव बड़ी धूम-धाम से बनाए जाते थे। वर्तमान में भी यह परम्परा जारी है। दशहरा चौक से ऊपर राजमहलों को जाने वाली सीढ़ियों को सतियों के पगोथिये कहा जाता है। सती नारियाँ सत्व्रत को जाते समय लाल कुमकुम से हाथ रंगकर दीवार पर निशान ''जौहर हस्त

चिह्न'' छोड़ जाती थी। बाद में कारीगर उसकी खुदाई कर लेता था। इन्हें अत्यन्त पवित्र व वंदनीय माना जाता है। स्थानीय लोगों के अलावा अन्य लोग भी इन्हें चमत्कारिक मानते हैं व माथा टेककर ही आगे बढ़ते हैं।

सीढ़ियाँ पार कर हम टिकट खिड़की तक पहुँचते हैं। सामने जैसलमेर राज परिवार का निजी मंदिर- श्री स्वांगिया जी मंदिर है, जिसकी स्थापना किले के साथ की गई थी। राजमहलों की वास्तुकला व भव्यता देखते ही बनती है। उनको संग्रहालय का रूप देकर उसमें भाटी शासकों की सुन्दर तस्वीरें लगी हुई हैं। राजपरिवार की वंशावली व वंशवृक्ष, विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्र, फोटो गेलेरी, प्राचीन मुद्रा व टिकट, संस्कृति के विभिन्न रूप, शाही पौशाकें, सामान आदि सुव्यवस्थित ढंग से रखे गए हैं जो हमें अतीत की झलक दिखाने में सक्षम है। गज विलास, अक्षय विलास, जुलूस के समय उपयोग में आने वाले प्रतीक चिह्न, विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ आदि दर्शनीय हैं। यहाँ तीन मेघाडम्बर छत्र रखे हुए हैं। प्रथम महारावल के पीछे रहता था जो उनकी सुरक्षा का प्रतीक था। द्वितीय राजपरिवार व तृतीय जनता की सुरक्षा का प्रतीक था। आगे बढ़ने पर रंग महल, सर्वोत्तम विलास, राजगद्दी आदि अपनी अत्यन्त सुन्दरता से दर्शकों का मन मोह लेते हैं। इनके अन्दर बने भित्ति चित्र और चूनम चोखटे में मढ़े हुए राजपूत और मुगल शैली के विभिन्न चित्र दर्शनीय है। काँच के चित्र तथा पत्थर की बारीक नक्काशी का कार्य सर्वोत्तम है। ऐसा महीन कार्य जैसलमेर नगर में और कहीं नहीं है।

गढ़ हेमाळो हेम रो, घेरम घेर घुमेर।
कारीगरी कमाल री, जाइजो जैसलमेर।

राजमहलों के ऊपर भाटियों का केसरिया ध्वज फहरा रहा है, जो उनकी मान-मर्यादा और बलिदान का परिचायक है। इसके पास वाले रनिवास के महलों पर मेघाडम्बर छत्र का प्रतीक चिह्न जो कि अष्ट धातु से बना है, स्थापित है। इसे भाटी शासक राजतिलक, विवाह, उत्सव व त्योहार आदि अवसरों पर धारण करते थे। इसी कारण यहाँ के शासक छत्राला यादव कहलाते हैं। आगे बढ़ने पर जनाना महल आरम्भ होता है। यहाँ रानी महल के सामने कुंवरपदा स्थित है। जैसलमेर दुर्ग की प्रतिकृति बड़ी आकर्षक है। रानी महल में जैसलमेर की लोक-संस्कृति की संपूर्ण झलक देखने को मिलती है। मूमल-महेन्द्र की प्रेम कथा, वाद्य यंत्र, लोक संस्कृति को दर्शाते हुए विभिन्न चित्र व वस्तुएँ यहाँ प्रदर्शित की गई हैं। आगे फोटो गैलेरी में प्राचीन जैसलमेर के श्वेत-श्याम व वर्तमान गोल्डन जैसलमेर के रंगीन फोटो पर्यटकों को बहुत आकर्षित करते हैं।

छत्राला, यादव पति भारी।
भड़ किंवाड़ भाटभ अधिकारी।।

हम महलों से निकलकर पुन: चौक में पहुँचते हैं तब सामने पश्चिम दिशा में पवित्र जौहर स्थल व खुशालराज राजेश्वरी चामुण्डा माता मंदिर के दर्शन होते हैं। मन्दिर के ठीक पीछे व आदि नारायण टीकम जी के प्राचीन मंदिर के आगे प्रथम शाके में घेरे के दौरान मृत्यु को प्राप्त महारावल जैतसी जी प्रथम के स्मारक स्थित हैं, जिनका अन्तिम संस्कार यहीं किया गया था। साथ ही घड़सी की मूर्तियाँ स्थापित हैं। यहाँ से थोड़ी ही दूरी पर जैसलू कुआँ स्थित है, जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र से खोदा था। किले में अन्य राणीसर, बूलीसर व हरजाल कुए स्थित हैं। जैसल कूप से आगे कुण्ड पाड़ा जाने वाले मार्ग पर श्री लक्ष्मीनाथ जी का भव्य एवं ऐतिहासिक मंदिर स्थित है। जैसलमेर के श्रीकृष्ण भक्त सेवग सेणपाल जी ने यह मूर्ति मेड़ता से लाकर महारावल लखमण जी को सौंपी तब उन्होंने मंदिर का जीर्णोद्धार करवाकर उसमें मूर्ति स्थापित करवाई। इस मंदिर के कपाट सोने व चाँदी के बने हुए हैं। श्री लक्ष्मीनाथ जी भाटी राजपूतों के कुल देवता है। अत: वे ही राज मालिक कहलाए व महारावल स्वयं को उनका दीवान मानकर शासन करते थे, जिससे उनमें अहंकार का भाव पैदा नहीं होता था। इसके ठीक सामने ऊँचे चबूतरे पर श्रीगणेश व महादेव जी का श्री रत्नेश्वर मन्दिर स्थित है। सामने चौकी पर हनुमान जी विराजमान है। दुर्ग पर बने कोठारों में

आपातकाल हेतु अनाज संग्रहित किया जाता था। पश्चिम की तरफ भव्य जैन मंदिर- श्री पार्श्वनाथ प्रभु का मन्दिर व श्री संभवनाथ जी का मन्दिर स्थित है, जो प्राचीन एवं दर्शनीय है। किले की प्राचीर पर अलग-अलग स्थानों पर तनी हुई पाँच तोपें रखी हुई हैं। गौरवशाली अतीत के गवाह इस दुर्ग का भ्रमण पर्यटकों में रोमांच पैदा करता है।

किले से बाहर शहर में शाही परिवार का निवास बादल विलास अथवा मंदिर पैलेस दर्शनीय है। पटवों की हवेली, सालमसिंह की हवेली व नथमल की हवेली पत्थरों की नक्काशी के लिये प्रसिद्ध है। राजकीय संग्रहालय व लोक सांस्कृतिक संग्रहालय तथा गड़ीसर झील दर्शनीय है। बड़ा बाग की छतरियाँ, व्यास-छतरियाँ, मूल सागर, अमर सागर, लुद्रवा, बैशाखी, रामकुण्डा, कुलधरा व खाभा, सम व खुहड़ी के धोरे, वुड फॉसिल्स पार्क, जैसलमेर वार म्युजियम, देवगढ़ (घोटाडू) का किला, लोंगेवाला के भग्नावशेष व युद्ध संग्रहालय आदि दर्शनीय स्थल हैं। भक्ति व आस्था स्थलों में रामदेवरा में बाबा की समाधि तथा तनोट राय, घंटियाली राय, देगराय, भादरिया राय, तेम्बड़े राय, नभ डूंगर राय, काले डूंगर राय व पनोधर राय आदि शक्तिपीठ प्रमुख हैं। गजरूप सागर में स्वांगीया जी मन्दिर, चूंधी में गणेश मन्दिर, जोगीदास का गाँव में माता रानी भटियाणी मंदिर, कुछड़ी में आला जी मन्दिर, पनराजसर में पनराज जी का धाम के अलावा आसरी मठ, ख्यालामठ, गूहड़ा, गोडागड़ा, कपूरिया आदि अनेक आस्था स्थल हैं।

जूंझारां रा चौतरा, रंग जौहर री रास।
झीणा झरोखा झूलता, जैसाणें रो इतिहास।।

पृष्ठ 18 का शेष

मेरी साधना

राष्ट्रों का, ईरान और अमेरिका का युद्ध, ये सब सत्ता हेतु युद्ध हैं। परस्पर के स्वार्थ का युद्ध है। अपने-अपने हित की लड़ाई है। तो फिर धर्मयुद्ध क्या है? जो युद्ध असत्य को हटाकर सत्य की स्थापना के लिये लड़ा जाए, जो युद्ध अधर्म को हटाकर धर्म-स्थापना के लिये किया जाए, जो नीति और जीवन मूल्यों के लिये लड़ा जाए, वह है धर्म युद्ध। पू. श्री तनसिंहजी ने बहुत ही सरल शब्दों में धर्मयुद्ध की परिभाषा दी है-

दुखी जन के खातिर कृपाणें उठाई।
तमोगुण से मेरी ठनी थी लड़ाई।।

जब तमोगुण सत्व गुण पर हावी होता है। सबल निर्बल को पीड़ा पहुँचता है तो फिर पीड़ित की आर्तपुकार उठती है तब उसकी रक्षा के लिए की जाने वाली लड़ाई- लड़ाई नहीं है, धर्मयुद्ध है। तमोगुण बढता है तो अन्याय बढता है, अन्यायी को दण्ड देने के लिये होने वाला युद्ध धर्मयुद्ध है। ऐसे युद्ध में लड़ने का अवसर बार-बार नहीं मिलता है। अपना यश व कीर्ति फैलाने का, यश-कीर्ति ध्वजा फहराने का यह मौका होता है। ऐसी मृत्यु युग-युग तक जीवित रहती है। हमारे इतिहास के पन्ने इसी कीर्ति गाथा के प्रमाण हैं। युग-युग तक उनका कीर्ति गान गाया जा रहा है। जिन-जिनको ऐसा अवसर मिला है वे अमर हो गए हैं।

धर्मयुद्ध का स्वरूप युगीन परिस्थितियों द्वारा निर्धारित होता है। वर्तमान युग के धर्मयुद्ध का स्वरूप और साधन भिन्न प्रकार के हैं। आज हर क्षेत्र में हर क्षण धर्मयुद्ध का अवसर है। इसे समझने की आवश्यकता है। आज तमोगुण अंधकार, अन्याय, आतंक, भ्रष्टाचार, बलात्कार, चोरी, लूट बनकर न्याय, नीति, सदाचार पर हावी हो गया है। परन्तु आज हम लोग कर्तव्य-पथ से हटकर नामधारी क्षत्रिय बनकर घूम रहे हैं। 'मेरी साधना' के अवतरणों ने हमें कर्मधारी क्षत्रिय होने की प्रेरणा दी है। हम भी साधक बनें। इसके एक-एक अवतरण के एक-एक वाक्य को, शब्द को समझें, आत्मसात करें और तदनुसार अपना जीवन बनावें। तब जाकर हमें क्षत्रियोचित मृत्यु का अधिकार प्राप्त होगा। 'मेरी साधना' आधुनिक अर्जुन की गीता है। हमें रोज-रोज इसका पाठ करना होगा। तब जाकर हमें क्षत्रियोचित जीवने जीने का बल मिलेगा।

(क्रमशः)

विवाह

– स्व. सूरतसिंह कालवा

मानव में मानवीयता के विकास की प्रक्रिया उसके गर्भकाल से प्रारम्भ होती है। प्राचीनकाल में अनुभूत इस लक्ष्य को वर्तमान में वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा भी स्वीकारा गया है। किन्तु आज व्यावहारिक जीवन में तद्नुसार आचरण की प्रेरणा लगभग समाप्त हो चुकी है। काल के आधुनिक प्रवाह में कौटुम्बीय जीवन से सामाजिक दायित्वबोध की प्रथा मिट चुकी है। व्यक्ति और समाज में सामञ्जस्य बनाये रखने वाले कुटुम्ब आज दिखाई नहीं देते। वस्तुत: व्यक्ति, कुटुम्ब और समाज मिलकर एक इकाई है। इनका अलग-अलग अस्तित्व मानना न तर्कसंगत है और न व्यावहारिक। इस तथ्य की अनदेखी के कारण आज अनेक प्रकार की समस्या हमारे जीवन को दूभर बना रही है।

व्यक्ति के बिना समाज और समाज के बिना व्यक्ति की कल्पना ही भ्रामक है। कुटुम्बों से ही समाज बनता है। नवजात बालकों को कुटुम्ब और समाज के साथ जोड़ने का दायित्व प्रथम माता-पिता और बाद में कुटुम्ब जनों का होता है। समाज तो हैं पर सामाजिक जीवन नदारद है। मानव न कभी अकेला रहा, न कभी रहेगा। सामाजिकता (सामूहिकता) उसकी आवश्यकता है। इसी आवश्यकता ने समाज का निर्माण किया। सामूहिकता का आधार है सहयोगी भाव और सहयोगी भाव का आधार है सुसंस्कार। समाज के घटक कुटुम्ब में जन्मते हैं और जीवन समाज में ही व्यतीत करना होता है। कुटुम्ब का गठन होता है वैवाहिक विधि द्वारा।

श्रेष्ठ व्यक्ति ही श्रेष्ठ समाज व श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण कर सकता है, अत: व्यक्ति की श्रेष्ठता प्रथम आवश्यकता है। यही हमारी गरिमा है। समाज, वातावरण, शिक्षा, वीर्य दोष, मानसिक दोष आदि के कारण उत्पन्न दोषों को दूर करने तथा पैतृक एवं वंशानुगत गुणों को सुरक्षित रखने तथा उनके उन्नयन के लिये संस्कारों का विशेष महत्त्व है। संस्कारों के इस महत्त्व को भुलाकर ही हम अधोगति की ओर उन्मुख हुए हैं और होते जा रहे हैं। व्यक्ति को सामाजिक अधिकार प्राप्त करने के लिये संस्कृत ही नहीं, सुसंस्कृत होना आवश्यक माना गया है। संस्कार प्रणाली मानव के नव निर्माण की आधारशिला तैयार करती है। संस्कारों के अभाव में मनुष्य अपूर्ण है। प्रचलित सोलह संस्कारों में विवाह-संस्कार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्कार है।

इन्द्रिय तृप्ति भी उतनी ही आवश्यक है, जितना शरीर के लिये भोजन। काम मूल प्रवृति है। काम शक्ति पर विजय पाना असम्भव तो नहीं पर बहुत कठिन है। किन्तु इसे नियंत्रित, मर्यादित या संयमित तो किया ही जा सकता है। सभी वर्णों का या यों कहें समस्त सृष्टि का मूल आधार विवाह ही है। विवाह जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना होती है। मनुष्य का विकास मुख्यत: परिवार की दृढ़ता पर निर्भर होता है और विवाह के बिना कोई भी परिवार अस्तित्व में नहीं आ सकता। विवाह वह पुनीत और महत्त्वपूर्ण संस्कार है जो मानव को पशुत्व से ऊपर उठाकर सच्चे अर्थ में 'मानव' बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

उद्देश्य : विवाह एक सामाजिक आवश्यकता है और इसका उद्देश्य गहन एवं भावपूर्ण है। सृष्टि विस्तार के लिये स्त्रीत्व और पुरुषत्व इन दो धाराओं का सम्मेलन करवाना विवाह का पहला उद्देश्य है। यही सम्मेलन सृष्टि का कारण है जो अपने निरंतर प्रवाह से संसार को जीवित रखे हुए है।

मनुष्य की प्रवृति स्वभावत: स्वच्छंद आहार-विहार की होती है। अनेक योनियों से गुजरते हुए पशुत्व उसके स्वभाव में स्वत: आ जाता है अत: अवसर पाकर वह पशुत्व पर उतर आता है। स्त्री-पुरुष की इस पशु समान स्वच्छंद व निर्बाध काम भावना को एक ही जगह बांधकर, उसे शास्त्रीय मर्यादाओं में बांधकर धीरे-धीरे निवृति की ओर ले जाना विवाह का दूसरा उद्देश्य है।

परमेश्वर की कृपा से पुरुष को बढिया बीज और स्त्री

को बढिया खेत मिला है। काम वासना को नियंत्रित रखते हुए स्त्री-पुरुष को सम्भोग का वैद्य अधिकार विवाह प्रदान करता है। इस अधिकार का उपयोग करते हुए उत्तम (योग्य) संतान उत्पन्न कर, पितृ-ऋण से मुक्ति के लिये परिवार और वंश-परम्परा को कायम रखे, यह विवाह का तीसरा उद्देश्य है।

विवाह का चौथा उद्देश्य है-'वसुधैव कुटुम्बकम्' के पवित्र आदर्श को व्यवहारिक स्वरूप प्रदान करना। विवाह के बाद संतान उत्पन्न होते ही मनुष्य अपने घेरे में से निकलकर स्त्री, पुरुष व स्वजनों तक के बड़े घेरे में प्रवेश करता है। इस प्रकार उसकी अपने प्रति मोह ममता का क्षेत्र परिवार तक बढता है और शनैः शनैः समस्त विश्व में उसका विस्तार होकर अंत में वसुधैव-कुटुम्बकम् का भाव जाग्रत होता है।

गृहस्थ में रहते हुए दंपती को एक-दूसरे के हित के लिये त्याग, क्षमा, धैर्य, संतोष आदि का अभ्यास हो जाता है। धीरे-धीरे यही गुण विकसित होकर मनुष्य को सामाजिक क्षेत्र में विशिष्ठता प्रदान करते हैं। दंपती इन गुणों का प्रयोग ईश्वर प्राप्ति के आध्यात्मिक मार्ग में करते हुए भगवत् प्राप्ति की ओर अग्रसर होते हैं। यही तो मनुष्य जीवन का उद्देश्य है।

चयन : जिस प्रकार अत्यन्त विजातीय असवर्ण से विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है उसी प्रकार अत्यन्त सजातीय, सगोत्र और सप्रवर से भी विवाह वर्जित माना गया है। इसका वैज्ञानिक हेतु यही है कि विजातीय सम्पर्क से दोनों वस्तुओं के गुण नष्ट होकर नवीन विकृति का प्रादुर्भाव होता है और अत्यन्त सजातीय सम्पर्क से मूलवस्तु में कुछ भी विशेषाधान नहीं होता। सवर्ण असगोत्र का यौन सम्बन्ध ही शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक जीवन की स्थापना में उपयोगी है। यही प्रणाली जब तक सुरक्षित रहेगी तब तक कोई भी जाति अपने अस्तित्व को स्थिर रखने में समर्थ रहेगी।

माता की छः पीढ़ियों में विवाह वर्जित है। वे पीढियाँ (माता, दादी, पड़दादी) के वंश का टालकर ही वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए जाते हैं। पितृकुल अर्थात् पिता के वंश में तो सौ पीढ़ी होने तक भी विवाह करने का लोकाचार नहीं है।

वर-वधु के चयन का क्षेत्र धन-दौलत नहीं बल्कि रक्त की पवित्रता और संस्कारिता होना चाहिए। विदेशी जिसे चाहते हैं उसे ब्याहते हैं, हम भारतीय जिसे ब्याहते हैं उसे चाहते हैं। हमारी जाति का दाम्पत्य जीवन सुखकर, शुचिकर, रुचिकर बनाने के लिए स्थापित और स्थिर सिद्धान्त यही है कि विवाह प्रेम मूलक न हो बल्कि प्रेम विवाह मूलक हो। यही श्रेयस्कर है। विवाह दो आत्माओं का पवित्र बँधन है। पति-पत्नी मर्यादित, प्रेमपूर्ण और सहयोगी जीवन जीते हुए भावनात्मक निकटता प्राप्त करें, केवल यौन तृप्ति ही विवाह का लक्ष्य नहीं है।

आयु : प्रकृति के नियमों को ही प्रधानता देकर शास्त्रों में विवाह की आयु निर्धारित की गई है। रजोदर्शन के बाद स्त्री के हृदय में काम वासना का उन्मेष होने लगता है। ऐसी अवस्था में आवश्यक है कि उसकी इस मानसिक प्रकृति को एक केन्द्र पर स्थापित किया जाए। तभी उसकी समस्त वासनाएँ, कामनाएँ, आकांक्षाएँ अपने पति पर ही आश्रित हो सकेंगी। पुरुष की आयु उसके ब्रह्मचर्य पूर्ण करने व युवा होने के बाद विवाह योग्य मानी गई है। दोनों की ऐसी अवस्था में विवाह होने पर पति-पत्नी में उम्र भर प्रेम रहेगा, उनकी संतान बलवान, स्वस्थ और दीर्घजीवी होगी। ध्यान रहे, विवाह और गर्भाधान दोनों अलग-अलग संस्कार हैं। गर्भाधान स्त्री के इसके लिये सक्षम होने पर ही उचित है। संविधान के अनुसार पुरुष की आयु 21 वर्ष व स्त्री की आयु 18 वर्ष निर्धारित की गई है। अधिक उम्र में विवाह होना विकृतियाँ पैदा कर सकता है।

रीति-रिवाज : विवाह संस्कार के समय अपनाये जाने वाले रीति-रिवाज क्षेत्र के अनुसार अलग-अलग हैं। वर-पूजन, मंगल फेरे, कन्यादान व सप्तपदी विवाह संस्कार के मुख्य चार अंग हैं। इन परम्पराओं और मर्यादाओं को निभाते हुए यह संस्कार सम्पन्न किया जाना चाहिए और अनावश्यक दिखावे, खर्च आदि से बचना चाहिए।

विदाई : जिस घर में कन्या जन्मी, पली, खेली, पढी, बड़ी हुई उसी आँगन और उसी चौखट से सम्भव हो तो उसे विदा करना चाहिए क्योंकि वहीं पर उसका भावनात्मक लगाव है।

*

विचार सरिता

(द्वापञ्चाशत् लहरी)

– *विचारक*

सृष्टि के समस्त प्राणियों के देह भिन्न–भिन्न आकार लिये हुए हैं। कोई छोटा, कोई बड़ा। कोई ऊँचा कोई नीचा, कोई टेढ़ा कोई सीधा, कोई पृथ्वी के समतल आकार वाला तो कोई सीधी मेरूदंड वाला, कोई चार पांव वाला तो कोई दो टांग वाला, कोई सैंकड़ों पांव वाला तो कोई बिना पांव वाला। इस तरह देह के आकार विभिन्न हैं पर उन सब में निराकार आत्मा एक है। उसमें कोई भिन्नता नहीं। शरीर के छोटे या बड़े होने से आत्मा में कोई छोटापना या बड़ापना नहीं होता। वह तो सभी घटों में आकाशवत् एक रस विद्यमान है। आत्मा का इन देह रूपी भांडों से कोई सम्बन्ध भी नहीं। देह रूपी भांडा आकार लिये हुए है तब भी वह है और ''देह का आकार परिवर्तित हो जाता है तब भी वह है।''

जिस प्रकार आकाश सब ठौर विद्यमान है, ऐसे ही आत्मा न केवल देह को ही प्रकाशित करती है अपितु वह तो पूरे ब्रह्माण्ड को प्रकाशित कर रही है। अहोभाव से जिसने अपने देह में उस प्रकाश–पुञ्ज को जाना है वह समस्त ब्रह्माण्ड में भी उसे अनुभव कर सकता है। क्योंकि हमारा आत्मतत्व माला के मणिकों में अनुस्यूत धागे की भाँति है। माला का प्रत्येक मणिक उस धागे के आधार टिका हुआ है। उस धागे के अस्तित्व के कारण ही माला का आकार है, उसका नाम और रूप उस धागे के आश्रित है। ऐसे ही हमारे जीवन का आधार भी हमारा आत्मस्वरूप ही है। जब तक साधक उस आधारभूत तत्व को ठीक से नहीं समझ लेता है तब तक भटकाव बंद नहीं होता।

सागर के ऊपर लहरें अनंत हैं। कोई छोटी लहर कोई बड़ी लहर, कोई गन्दी लहर कोई स्वच्छ लहर, कोई टेढ़ी लहर कोई सीधी लहर। लेकिन उन समस्त लहरों के भीतर वही सागर विद्यमान है जिस पर वे अठ्खेलियाँ कर रही हैं। ऊपर–ऊपर आकार है किन्तु सागर के भीतर निराकार है। साधक जब अपने ऊपर आवरण से अतीत होकर भीतर की गहराइयों में प्रवेश करता है तब जो कुछ अनुभूति उसे होती है उस पर प्रथम क्षण तो उसे भरोसा ही नहीं होता। वह अवाक् रह जाता है। वह सोचता है कि आज तक जो देखा नहीं वह प्रत्यक्ष हो रहा है। सचमुच मैं अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप हूँ। वह आश्चर्य से भर जाता है। यह आश्चर्य ही उसका स्वरूप है। जिसने अपने आपको पा लिया, उसने अनंत को पा लिया। उसी दिन से वह अनंत का मुसाफिर हो जाता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि अनंत के मुसाफिर की मुसाफिरी ही समाप्त हो जाती है। अब उसको कहीं जाने की आवश्यकता ही नहीं रही। उसने वह सब कुछ पा लिया जो उसे पाना था। वह वहाँ पहुँच गया जहाँ उसे जाना था। वह स्वयं विराट स्वरूप बन गया। अब वह कहाँ नहीं है। दसों दिशाओं में वही तो विद्यमान है। ऐसे आश्चर्य से भर जाने के बाद वह निश्चेष्ट होकर अपने आनंदस्वरूप आत्मा के आनंद में गोता लगा लगाकर आनंदित होता रहता है। इसी का नाम मुक्ति है। इसी का नाम जीवन मुक्ति है।

अंधेरे का कोई अस्तित्व ही नहीं है। प्रकाश के अभाव को हमने अंधेरा कह दिया। अंधेरा यदि वास्तव में होता तो जाता नहीं। उसकी मौजूदगी तभी तक है, जब तक प्रकाश की किरण नहीं उतरी। हम ना समझ लोग अंधेरे को भगाने का उपक्रम करते हैं। उसे हटाने में निरर्थक क्रियाएँ करते हैं। समझदार तो वह है जो अंधेरे को भगाने के लिये एक दीपक जला दे तो अंधेरा तत्काल भाग जाएगा। जिस कंदरा में हजारों साल से अंधेरे का साम्राज्य हो और वहाँ कोई दीपक जला दे तो अंधेरा यह नहीं कहेगा कि मैं हजारों वर्षों से डेरा जमाए बैठा हूँ। मात्र इस

दीपक के प्रकाश से मैं कैसे भाग जाऊँ। असल में प्रकाश के अभाव का नाम अंधेरा है। अंधेरे का अपना कोई अस्तित्व नहीं। ऐसे ही अज्ञान नाम भी ज्ञान के अभाव का है। अज्ञान का भी कोई अस्तित्व नहीं है। जिस क्षण हमें अपने होने का अहसास हो जाता है, उसी क्षण अज्ञान भाग खड़ा होता है। असल में अज्ञान था ही नहीं। बस आत्मविस्मृति के कारण हमें अपने आपका बोध नहीं था अत: हमने अपने आपको अज्ञानी के नाम से अलंकृत कर लिया। आत्म-विस्मृति के कारण ही देहाध्यास हुआ और देह में अहं-मम की भ्रांति के कारण संसार खड़ा हो गया। एक ऐसी चकाचौंध प्रतीत होने लगी कि हम किंकर्तव्य विमूढ होकर ठगे जाने लगे और अनंत जन्मों में इस भ्रांति की निवृति का कोई उपाय नहीं सूझा और हम जन्मों-जन्म भटकते आ रहे हैं। इस जीवन में हम चाहें तो अभी और इसी समय इस भटकाव को बंद कर सकते हैं। किसी ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष की शरण में जाकर उस दिव्य प्रकाश को अनुभूत करने की कुञ्जी खोज लें तो हम तत्काल अपने आत्म-स्वरूप में जग सकते हैं। यह जीवन तो जग जाने के लिये है। इस मनुष्य चोले में आकर भी यदि सोये हुए रह गए तो न जाने ऐसा सुअवसर फिर कभी आए या न आए। जिन महापुरुषों को जो जाग्रति आई है वह इसी चोले में आई है। इसलिए साधक को चाहिये कि इस सुअवसर का लाभ अवश्य ले लेना चाहिए। अब कोई चूक न हो जाए इसलिये सन्त लोग आह्वान करते हैं कि- चेते हैं तो चेत बावरा, घण्टी पाछली बाजी।

आत्मस्मृति की जाग्रति आने के उपरान्त सब कुछ गलित हो जाता है। अभी तक जिसे हमने अपना समझा था वह देह और उससे सम्बन्धित समस्त जगत-पदार्थ व सम्बन्धी भी गलीभूत हो गए। जब मैं ही नहीं तो मेरा कहाँ। उस समय दो स्थितियाँ बनती हैं। पहली स्थिति यह हो सकती है कि सब कुछ मैं ही हूँ। विराट रूप से जो दर्शन हो रहा है, उस सबका साक्षी मैं आत्मदेव। यह संसार मुझ में है और मैं संसार में हूँ। मैं पूर्ण हूँ। मुझ पूर्ण से ही यह पूर्ण संसार जाना जाता है। तथा मुझ पूर्ण परमात्मस्वरूप में से इस पूर्ण जगत को निकाल दिया जाए तो भी शेष जो बचता है वह पूर्ण ही बचता है। इसीलिए ईशोपनिषद ने कहा-ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाव शिष्यते।। उस विज्ञानी की दूसरी स्थिति यह भी हो सकती है कि मैं हूँ ही नहीं, मेरा कुछ भी नहीं। बस निराकार स्वरूप शून्य के अतिरिक्त न मैं हूँ न मेरा संसार।

उपरोक्त दोनों ही बातें सही हैं। या तो मैं पूर्ण परात्पर ब्रह्म हूँ, अथवा केवल शून्य है। शून्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। परमज्ञान की उपलब्धि होने पर जब यह स्पष्ट हो जाता है कि मुझ परमानंद स्वरूप आत्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं तो हम त्याग किसका करेंगे। त्याग तो तब होता है जब आपका कुछ हो। मान लीजिये आपको रात्रि में स्वप्न आया और आप राजा बन बैठे। विशाल साम्राज्य, सुन्दर पत्नी, आज्ञाकारी पुत्र और अनुचरों सेवकों की लम्बी कतार। सुबह जगने के बाद आप यह तो नहीं कहते कि मैंने विशाल साम्राज्य के समस्त वैभव का त्याग कर दिया है। यदि ऐसा ढिंढ़ोरा पिटवाओगे तो लोग आपको पागल कहेंगे। क्योंकि सपने की सृष्टि का अस्तित्व तो स्वप्न काल तक ही है। जाग आ जाने के बाद वह सब मिथ्या हो जाता है। ऐसे ही मोहनिद्रा के कारण आप जब तक स्वरूपस्थ नहीं हो जाते हो तब तक ही इस मिथ्या जगत का अस्तित्व है। जाग आ जाने के बाद इस जगत का अस्तित्व ही मिथ्या साबित हो जाता है। इसलिए यहाँ न त्याग करने जैसा कुछ है और न ग्राह्य ही है। बस साक्षीभाव से अपने आप में स्थिर होने की आवश्यकता है। विचारसागर कहता है कि-

एक अखण्डित ब्रह्म असंग, अजन्म अदृश्य अरूप अनामे। मूल अज्ञान न सूक्ष्म थूल, समष्टि न व्यष्टि पना नहीं तामे।। ईश न सूत्र विराट न प्राज्ञ, न तेजस विश्व स्वरूप न जामे। भोग न योग न बन्ध न मोक्ष, न कछु वामे रू है सब वामे।। आगे निश्चलदास जी महाराज लिखते हैं कि-

जाग्रत में जु प्रपञ्च प्रभासत, सो सब बुद्धि विलास बन्यो है। ज्युं सपने महीं भोग्य न भोग, तऊ एक चित्र विचित्र जन्यो है।। लीन सुषोप्ति में अमि होत ही, भेद भगे एक रूप सुन्यो है। बुद्धि रच्यो जु मनोरथ मात्रसु, निश्चल बुद्धि प्रकाश भन्यो है।।

सुना है एक बार राजा जनक को रात्रि में स्वप्न आया। दूसरी किसी राजधानी के राजा ने मिथिलापुरी पर आक्रमण किया। सारी सेना मारी गई और जनक को बंदी बना लिया गया। जनक के राजसी वस्त्र आभूषण उतरवा लिये गए और जनक को देश-निकाला दे दिया। कभी पैदल न चलने वाला जनक आज नंगे पाँव तपती धूप में पसीना बहाता हुआ, भूख-प्यास से व्याकुल मिथिला से निकल पड़ा। लम्बी यात्रा के कारण शरीर कृषकाय बन चुका था। तभी एक दूसरी राजधानी दिखाई दी। वहाँ एक जगह भिखारियों की कतार लगी हुई थी। पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह अन्नक्षेत्र है जहाँ रोजाना भिखारियों को खिचड़ी मिलती है।

भूख-प्यास से सन्तापित जनकजी भी उस कतार में लग गए। ज्योंहि जनकजी का नम्बर आया, खिचड़ी समाप्त हो चुकी थी और खिड़की बंद हो गई। ऐसी स्थिति में जनकजी बेहोश होकर भूमि पर गिर गए। खिचड़ी बाँटने वाले ने देखा कि आदमी बहुत भूखा-प्यासा है और निराशा में उसे मुर्छा आ गई है। वह बाहर आया, पानी के छींटे मारे और जनक को पानी पिलाया। होश आने पर ब्राह्मण ने खिचड़ी की खुरचन जो बची हुई थी वह लाकर दी। जनक ने हाथ रूपी दोने में खिचड़ी ज्यों ही लेकर मुँह की तरफ करनी चाही तभी एक चील ने खिचड़ी पर झपट्टा मारा और सारी खिचड़ी कीचड़ में गिर गई। उसी दौरान जनक के मुँह से चीख निकली और नींद टूटी। दरबान लोग दौड़कर आए तथा राजा से पूछा कि आपको क्या कष्ट हुआ हम सब सेवा में हाजिर हैं आप आदेश करें। राजा सबसे एक ही प्रश्न कर रहा है-यह सत्य है या वह सत्य है। सभी हैरान हैं। किसी के पास इसका उत्तर नहीं था। आखिर अष्टावक्रजी को लाया गया और यही प्रश्न राजा जनक ने अष्टावक्र से किया। तब अष्टावक्रजी ने जनकजी की स्वप्न सृष्टि से सम्बन्ध जोड़कर देखा तो पता चला कि राजा यह पूछना चाहता है कि मैं स्वप्न में भिखारी बनकर भटक रहा था वह सत्य है या यह राजसी ठाठ सत्य है। तब अष्टावक्रजी ने कहा- न यह सत्य है, और न वह सत्य है। दोनों ही मिथ्या हैं। इस पर जनकजी ने पूछा-तो फिर सत्य क्या है? इस पर अष्टावक्रजी ने कहा कि सत्य तुम स्वयं हो। स्वप्न की उपाधि के कारण जिस समय भिखारीपने का आभास हुआ, वहाँ भी तुम्हारी मौजूदगी थी। अब राजापने का आभास हो रहा है इसमें भी तुम्हारी मौजूदगी है। इस प्रकार तुम्हारे स्वरूप के अज्ञान काल में ही स्वप्नरत् जाग्रत के प्रपञ्च तुम्हें सत्य भासित हो रहे हैं क्योंकि अभी तुम्हारी पूर्ण जाग्रति का अभाव है। जिस समय तुम अपने आप में जाग जाआगे तब न यह सत्य रहेगा और न वह सत्य रहेगा। दोनों का अभाव हो जाएगा।

यह सब हमारी बुद्धि का विलासमात्र है। जिस क्षण हमारी बुद्धि में निश्चलता आ जाएगी अर्थात् विचार-शून्यता की स्थिति आ जाएगी, उस समय केवल और केवल सत्ता स्वरूपी आत्मतत्व के अतिरिक्त किसी की सत्ता का कोई अस्तित्व नहीं रहेगा। अतः बुद्धि पर आए हुए मल, विक्षेप व आवरण का अनावरण कर दें तो यथार्थ बोध की जाग्रति आ जाएगी। यही परमगति है। यही मोक्ष मुक्ति है।

जीवन ईश्वरीय देन हो या मात्र संयोग, यह हमारा सृजन
न होकर किसी 'अन्य' का पुरस्कार है।

- श्री चन्द्रप्रभ

बड़ा सच

– हरीसिंह उण्डखा

आजकल प्राय: प्रत्येक व्यास पीठ से मानवता पर उद्‌बोधन सुनने को मिलता है। मानवता की बात की सीख देते उद्‌बोधकों के गले सूख जाते हैं, आवाज फट जाती है परन्तु फिर भी मानवता कहीं दिखाई नहीं देती। व्यवहार में अनेक बार सुनने को मिलता है,–यह मनुष्यता को शोभा नहीं देता, इसमें मनुष्यता नहीं है, तनिक मनुष्य की तरह रहो–आदि–आदि। मनुष्य को ही कहा जा रहा है कि मनुष्य जैसा आचरण कर। आखिर यह मनुष्यता–मानवता क्या है? इसे कैसे समझें? मनुष्य के हाथ हैं, पैर हैं, सिर है; वह बड़ा होता है, विवाह करता है, लड़कों का विवाह करता है, दूसरों से सम्पर्क करता है और एक दिन यह जगत छोड़कर चला जाता है। यही तो सब करते हैं, फिर भी यह क्यों कहा जाता है कि मनुष्य के जैसा आचरण कर।

आज के विषैले वातावरण में मनुष्य–मनुष्य से धोखा करता आ रहा है। आज के हालत ऐसे हैं कि पटवारी जमीन के रेकार्ड में, थानेदार पुलिस थाने से हेराफेरी कर ही लेते हैं जबकि यह उनके सौंपे गये उत्तरदायित्व से विपरीत है। न्याय को अपने पक्ष में करना कौनसा कठिन है? सबूत बनाने और करवाने में लगता क्या है? आज के हालात ऐसे हैं कि डाक्टर शरीर से किडनी चुरा लेते हैं, माँ–बाप गर्भ में ही अपने बच्चे को मार डालते हैं, शिक्षक को अपनी छात्राओं से ही अनाचार करने में शर्म नहीं आती। यह सब करने वाले भी मनुष्य ही हैं। पर मनुष्य बनने को कहा जाता है, यह वैसा आचरण नहीं है। फिर मनुष्यता है क्या?

गीता में भगवान ने मनुष्य के आचरण की व्याख्या की है। भगवान कहते हैं–***'मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्या'***– अर्थात् जो मेरे मार्ग (भगवान का मार्ग) का अनुसरण करते हैं। ऐसे आचरण को मनुष्यता माना गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि जो भगवान के मार्ग पर नहीं चलते वे मनुष्य कहलाने योग्य नहीं हैं। संत लोग भी यही शिक्षा देते हैं कि उन्हें ही मनुष्य समझो जो भगवान के मार्ग पर चलते हैं।

आज मनुष्यों की संख्या बढ़ती जा रही है और मनुष्यता घटती जा रही है। मनुष्य को पशु कहा जाय तो उसे क्रोध आता है और देव कहा जाए तो वैसा आचरण कहाँ। यह याद रखें कि बहुत बड़ा मूल्य चुकाकर हमने यह शरीर भगवान से उधार लिया है। इस शरीर पर हमारा अधिकार नहीं है, इसीलिए तो भगवान जब चाहें, उसे ले जाते हैं। यह शरीर बड़े काम का है। ***नर अपनी उत्तम करनी करे तो नर का नारायण बन जाए।*** हम नारायण थे, उससे नर बने परन्तु फिर से हमें नारायण बनना है, वानर नहीं। इसके लिये परिश्रम की आवश्यकता है और उसी को साधना कहते हैं। यह साधना किये बिना आवागमन से छुटकारा नहीं।

यह साधना श्री क्षत्रिय युवक संघ हमें निरंतर सिखाता रहता है। हमें मनुष्य बनाने के लिये निरंतर प्रयासरत है। पू. तनसिंहजी ने कहा– ***अपना दीप जलाओ, अपने भीतर ज्योति जलाओ।*** संघर्ष करना है साधना में। संघर्ष स्वयं अपने आप से। अपने भीतर जमी गंदगी की परतों से संघर्ष, अपनी धारणाओं से, अपने आलस्य व प्रमाद से संघर्ष, अपने स्वार्थ से, अपने अहंकार से संघर्ष, विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष। जोश में आकर नहीं, होश रखकर यह करना होगा। तब जाकर मनुष्य बनेंगे, मनुष्यता के पाठ को उजागर कर पाएंगे।

अब मैं समझ पाया हूँ कि यदि मैं क्षत्रिय युवक संघ की धारा का पथिक नहीं बनता तो मात्र शरीर से मनुष्य होता परन्तु 'मैं मनुष्य हूँ' की व्याख्या को पा नहीं पाता। संघ जीवन से अब मैं साधना मार्ग पर चल पड़ा हूँ तो निरंतर संघ कार्य को करता चलूं। यही इच्छा, मनुष्यता को प्राप्त करूँ। साधना चलती रहे।

वर्तमान परिपेक्ष्य में बाल्यास्था व शिक्षा

– भँवरसिंह रेड़ी

आम तौर से मनुष्य के जीवन को 100 वर्ष का मानकर चार आश्रमों में विभक्त किया गया था। सबसे पहला आश्रम ब्रह्मचर्य आश्रम 1 वर्ष से 25 वर्ष तक का माना गया था। इस ब्रह्मचर्य आश्रम में ही अध्ययन प्राप्त करने की व्यवस्था थी। बाल्यावस्था से ही अध्ययन शुरू किया जाता रहा है।

बाल्यावस्था या बालपन मानव जीवन का सर्वश्रेष्ठ भाग माना गया है। कहते हैं कि सूरदास जी की भक्ति से श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर वरदान माँगने को कहा तो उन्होंने अपना बचपन वापिस लौटा देने की माँग की थी और श्रीकृष्ण ने असमर्थता जाहिर की थी। हर बुद्धिमान व्यक्ति अपनी बाल्यावस्था फिर से लौटा लाना चाहता है। क्या हम महसूस नहीं करते कि हमारे जीवन में कुछ ऐसा भी है कि वह हमारे बाल्यकाल से जुड़ा रहता है और वह बालपन के साथ ही चला जाता है। जिसकी रिक्तता व्यक्ति जीवन भर महसूस करता रहता है।

आज के युग में सामाजिक परिस्थितियों में तीव्र गति से परिवर्तन आ रहा है जिसमें बचपन तेजी से खोता जा रहा है। यदि हम आधुनिक बच्चों के बालपन का मूल्यांकन करें तो ऐसा ही परिणाम स्पष्ट रूप से सामने आएगा। यह एक विचार करने योग्य प्रश्न है कि जिस बालक ने अपना बालपन भोगा ही नहीं है क्या उम्र भर उसके जीवन में सूनापन दिखाई नहीं देगा? बच्चे को जिस प्रकार का वातावरण मिलेगा उसी के अनुसार उसका विकास होगा। बाल्यावस्था में उसके विकास के लिये पूर्ण स्वतंत्रता चाहिए, उसे भरपूर स्नेह माधुर्य चाहिए। उसे किसी प्रकार का बन्धन नहीं चाहिए। बालक के मन में अनेकानेक जिज्ञासाएँ उठती हैं उसे इन जिज्ञासाओं का समाधान चाहिए। क्योंकि ये जिज्ञासायें ही उसके भावी जीवन की झाँकी होती है।

बालक के प्रारम्भ के 5-6 वर्ष जीवन का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण समय होता है। उसके पूरे जीवन की नींव इसी काल पर निर्भर होती है। यही समय उसके शारीरिक व मानसिक विकास का समय होता है। बालक हमारे परिवार में जन्म लेता है तो उसके पीछे अदृश्य विशिष्ठ कारण होते हैं जिसको पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानने वाले ही भली प्रकार समझ सकते हैं। बालक की वह स्वतंत्र आत्मा किन्हीं संस्कार वश ही हमारे परिवार में जन्म लेती है, ऐसे में हमारी जिम्मेवारी और अधिक बढ जाती है। उसके विकास के लिये उसको अनुकूल वातावरण उपलब्ध करवाने की सारी जिम्मेवारी हमारी ही तो होती है। लेकिन होता सब कुछ इसके विपरीत है। माताओं को उसके समुचित विकास का ध्यन ही नहीं रहता और वे अपनी सुविधा के लिये उसको किसी भी परिस्थिति में रहने को विवश कर देती हैं। नाइट क्लबों या समारोहों या सिनेमा गृहों में जाते समय उसकी स्वतंत्रता का ख्याल न रखकर अपनी स्वच्छन्दता या अपने मनोरंजन के लिये या तो उसे घंटों बन्द कमरे में छोड़कर चली जाती हैं या फिर कई बार दिखावे या बड़प्पन के लिए साथ ले जाती हैं तो उसके ऊपर ढेर सारे इतने कपड़े लाद देती है कि उसका विसर्जित मल मूत्र भी कपड़ों में ही बना रहता है तथा बच्चे की सहज अवस्था लुप्त प्राय हो जाती है। इसी प्रकार उसको प्राकृतिक खान-पान न कराकर सिंथेटिक आहार, डिब्बा बन्द सामग्री या बासी सामग्री खिलाकर फैशन परस्ती बनना दिखाती है जब कि शरीर केवल प्राकृतिक आहार को ही पचा सकता है बाकी पदाथों को विसर्जित कर देता है तथा इस विसर्जन क्रिया में इतना जोर लगाना पड़ता है कि पाचन क्रिया कमजोर हो जाती है।

आज के युग में संयुक्त परिवारों का जिस तेजी से विघटन हो रहा है उसका सबसे अधिक प्रभाव बालक पर

पड़ रहा है। इस नुकसान की भरपाई बालक उम्र भर नहीं कर पाता। घर की पिछली पीढ़ी का स्नेह, माधुर्य, सान्निध्य उसको नहीं मिल पाता उसके विकास के मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं, वह अकेला पड़ जाता है। भूतकाल की विरासत से वह वंचित हो जाता है। बड़े बुजुर्गों के अनुभवों से वंचित हो जाने के कारण सच्ची शिक्षा से परे हो जाता है। बच्चे का मन दर्पण होता है। उसमें भले बुरे का भेद करने की क्षमता नहीं होती है। भय भी उसके मन में नहीं होता है। उपदेश या डाट-डपट का भी उस पर कोई असर नहीं पड़ता है। बालक प्रत्येक घटना को निर्विकार रूप से देखता है और उसे समझने का प्रयास करता है इसी कारण वह प्रत्येक बात को समझने के लिये पुन: पुन: प्रश्न करता रहता है, वह अपनी बुद्धि से इसमें कुछ भी जोड़ने का प्रयास नहीं करता बल्कि सब कुछ हम से उगलवाना चाहता है लेकिन हम हैं कि अपने काम से काम और उसकी इन जिज्ञासाओं पर झिड़क कर पानी फेर देते हैं।

बालक की शिक्षा परोक्ष रूप से कहानी, गायन, कविता आदि प्रसंगों से होती रहती है। इससे बालक को आनन्द भी आता है और उसका संदेश उसके हृदय पटल पर भी अंकित होता है। कहानी किस्सों से बालक को पूरा दर्शन सिखा सकते हैं। रामायण, महाभारत आदि महाकाव्य उनको आसानी से याद हो जाते हैं क्योंकि जिस विषय में बालक की रुचि पैदा हो जाती है उसकी पकड़ अतिशीघ्र हो जाती है तथा बाल्यावस्था में ग्राह्य शक्ति भी प्रर्याप्त होती है। इससे उसका मानसिक व बौद्धिक विकास हो जाता है तथा एक नया अनुभव प्राप्त करके भावी जीवन में संघर्ष के लिए परिपक्व हो जाता है।

स्कूली शिक्षा ठीक इसके विपरीत दिशा में बालक को ले जाती है क्योंकि स्कूली शिक्षा बालक का विकास केवल एक ही दिशा में करती है। स्कूली शिक्षा केवल बालक को नौकरी दिलाने में तो सहायक हो सकती है परन्तु सामर्थ्यवान नहीं बना सकती। वह केवल अपना पेट भर सकता है लेकिन दूसरों का नहीं। और अब आरक्षण व्यवस्था लागू होने के बाद तो राजपूत समाज के लिये तो भारतीय सेना में भर्ती के अतिरिक्त तो नौकरी एक कल्पना-सी बनकर रह चुकी है। अब नौकरी पर निर्भर न रहकर बालक को ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है कि जिससे वर्तमान परिस्थितियों में वह अपने पैरों पर खड़ा रह सके, संघर्ष करना सीख सके, परिस्थितियों का मुकाबला करना सीख सके।

हमारे देश की सामाजिक व्यवस्था बहुत तेजी से बदल रही है। पढाई के बाद नौकरी या अन्य धन्धे के लिये घर छोड़ने की उतावली रहती है और बच्चों को साथ ले जाने से बच्चे अपने दादा-दादी, नाना-नानी से अपने आप दूर हो जाते हैं। बच्चों के माँ-बाप उनको दादा-दादी के पास इसलिए नहीं छोड़ना चाहते कि उनको यह भय रहता है कि इनके पास रहकर बच्चे आधुनिकता के नये परिवेश में ढलने से वंचित रह जाएंगे।

यह हमारे समाज की विडम्बना ही समझनी होगी कि नए माँ-बाप की सोच भी विदेशी परिवेश (पाश्चात्य संस्कृति) का हो गया है। उनको न बच्चों को सिखाने का तरीका है न यह मालूम है कि बच्चों को क्या सिखाना चाहिए, न ही बच्चों को सिखाने के लिये उनके पास समय रह गया है। और इसी कारण उन माँ-बापों की बच्चों से दूरियाँ बढती जाती हैं। उनकी परस्पर चर्चा भी नहीं हो पाती। माँ भी यदि नौकरी करती है तो बच्चे को दूसरों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। वह माँ व बाप दोनों के स्नेह, दुलार व प्यार से वंचित ही रहता है। और इस प्रकार उसको संवेदनशील व मानवीय गुणों का पोषण कहाँ से मिलेगा?

यदि माँ घर पर रहती है तो उसका सारा ध्यान होमवर्क पर रहता है। वह उसको बुद्धिजीवी बनाना चाहेगी। बच्चे को होमवर्क करने में माँ की ममता का नजारा देखने को मिलता है उसे बच्चा शायद ही अपने जीवन में भूल पाये।

नई पारिवारिक इकाई में एक परम्परा प्रवेश करने लगी है। घर में कुछ आर्थिक साधन जुटते ही बच्चे को बाहर भेजने की योजना शुरू हो जाती है। माँ-बाप को

उच्च शिक्षण संस्थान में शिक्षा दिलाने का अहम हो जाता है। अधिकतर धनाढ्य परिवारों के बच्चे घर से दूर रहते हैं। घर में जो सुख ईश्वर ने दिया है, न बच्चे भोग सकते हैं न माँ-बाप भोग सकते हैं।

इसका एक प्रभाव मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी देखा जा सकता है। बच्चों को सुदूर भेज देते हैं तब माँ-बाप को सूनापन अखरने लगता है। बच्चों की चिन्ता रात-दिन अखरती रहती है। माताएँ टेलीफोन पर बैठी रहती हैं। बच्चे और माँ-बाप निरंतर जीवन के अधूरेपन को महसूस करते रहते हैं। हालांकि वे माँ-बाप प्रकट में तो अहम के लिये इस बात को स्वीकार नहीं करते लेकिन उनके मन का एक कोना खाली रहता है। घर में बच्चों की अनुपस्थिति में सब कुछ सुना-सा लगता है। घर की दीवारें कचौटती हैं। उनको यह सब कुछ अन्दर ही अन्दर झेलना पड़ता है। उनको इन सब दुविधाओं को नकारने का अभिनय करना पड़ता है और बच्चे के विकास की, व बच्चे के भविष्य की कथाएँ चर्चा में रखकर मन बहलाना पड़ता है।

माँ-बाप की तरह बच्चे भी एक कृत्रिम वातावरण में रहने लग जाते हैं और पारिवारिक व सामाजिक असली वातावरण के अनुभव व सुख-से वंचित रह जाते हैं। माँ-बाप स्वतंत्रता के आभास के साथ ही अकेले रहते हुए उम्र में कम दिखाई पड़ते हैं उनकी गतिविधियाँ फिर से युवाओं जैसी हो जाती हैं। जीवनशैली में यह नया परिवर्तन उनके जीवन को एक नया स्वरूप प्रदान करता है तथा मन के खाली कोने फिर से भरने लग जाते हैं।

इधर बच्चा कुछ सालों बाद घर लौटता है तो वहाँ सब कुछ एक नया परिवेश पाता है, वैचारिक धरातल में भी एक बड़ा अन्तर पाता है। उसका लगाव परिवार व समाज से किंचित मात्र रह जाता है और वह नौकरी या अपना अकेला कोई अन्य स्वतंत्र धन्धा करके अपनी नई दुनियाँ बसाने का सपना देखने लग जाता है। उसके मन में पारिवारिक स्नेह भाव नाममात्र का रह जाता है। माता-पिता, दादा-दादी को श्रद्धेय या पूज्यनीय की बजाए परिवार का एक सदस्य के रूप में अधिक जानता है। वह प्रदर्शन मात्र रह जाता है और पारिवारिक विघटन हो जाता है।

उपसंहार : आज सारा क्रम बदल गया है, पहली बात तो यह कि बच्चों के आसपास बुजुर्ग ही नहीं होते हैं। छुट्टियों में मिलते भी हैं तो उनके विषय बच्चों को आकर्षित नहीं कर पाते। आज के बच्चे के मानस पटल पर स्वच्छन्दता का एक विशेष आवरण छाया जा रहा है। घर के लोग बच्चों के लिये सब कुछ करें यह उनकी ड्यूटी है लेकिन बच्चा उनके लिये कुछ करे या न करे यह उसकी मर्जी है। शहरों के सम्पन्न घरानों में यह देख सकते हैं बच्चों को रोकने के लिये उनके पास समय ही नहीं है। सब अपने-अपने कार्यों में मस्त हैं। बच्चे को किसी शिक्षण संस्थान में प्रवेश दिलाकर आवश्यक शुल्क अदा करके अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। किसी भी पीढ़ी के माँ-बाप अपनी दिनचर्या में बच्चों के लिये उपयुक्त समय निकाल पाने में असमर्थ हैं। बच्चों को कैसे सिखाया जाता है उनको जीवन के प्रत्येक मोड़ पर क्या-क्या दिशा-निर्देश देने हैं यह उनको ज्ञात ही नहीं है।

मीठी-मीठी बातें करना, कहानियाँ-किस्से सुनाकर उनको बाँधे रखना और जीवन की सार गर्भित बातें उनके मानस पर अंकित कर देना माँ-बाप के वश का कार्य रह ही नहीं गया है। वे कितना ही प्रयास कर लेवें उनसे पार पड़ने वाली बात नहीं है।

अन्ततोगत्वा यह बीड़ा तो बड़े बुजुर्ग समझदार बुद्धिजीवी लोगों को ही उठाना पड़ेगा। उनके आगे ही बच्चों का अहंकार गलेगा, विनम्रता जागेगी, जिज्ञासायें शान्त होगी। उनके सान्निध्य से ही परिवार व समाज के महत्त्व को समझ सकेंगे। उनसे ही मुक्त विचारों का आदान-प्रदान सम्भव है। उनसे ही उनकी उन्नति सम्भव है। उनसे ही हमारी प्राचीन सामाजिक मूल संस्कृति की सुरक्षा सम्भव है।

*

अपनी बात

संतों के मुख से सुना है कि संसार से विमुखता होने पर परमात्मा से सन्मुखता हो जाती है। इस कथन में आखिर संसार का अर्थ क्या है? संसार का अर्थ है- आकांक्षा, तृष्णा, वासना, कुछ होने की चाह। संसार का अर्थ ये बाहर फैले हुए चाँद-तारे, वृक्ष, पहाड़-पर्वत, लोग आदि यहाँ नहीं है। संसार का अर्थ है भीतर फैली हुई वासनाओं का जाल।

संसार का अर्थ है- मैं जैसा हूँ वैसे से तृप्ति नहीं है, कुछ और होऊँ तब तृप्ति होगी। जितना धन है, उससे ज्यादा हो। जितना सौंदर्य है, उससे ज्यादा हो। जितनी प्रतिष्ठा है, उससे ज्यादा हो। जो भी मेरे पास है, वह कम है। ऐसा जो काँटा गड रहा है, वही संसार है। और ज्यादा हो जाए, तो मैं सुखी हो सकूंगा।

जो मैं हूँ, उससे अन्यथा होने की आकांक्षा संसार है। जिस दिन यह आकांक्षा गिर जाती है; जिस दिन व्यक्ति जैसा है उसी में परम तृप्त है; जहाँ है वहीं आनन्द रस विमुग्ध; जैसा है वैसा ही गद्‌गद्-तो उसी क्षण संसार मिट जाता है। और संसार का मिटना और परमात्मा का होना दो चीजें नहीं हैं। ऐसा नहीं है कि पहले संसार मिटा और फिर बैठे राह देख रहे हैं कि अब परमात्मा कब होगा। संसार का मिटना और परमात्मा का होना एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं। चाहे कहो रात मिट गई, चाहे कहो सुबह हो गई, एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं। ऐसा नहीं है कि रात मिट गई, फिर लालटेन लेकर खोज रहे हैं कि सुबह कहाँ है? रात मिट गई तो सुबह हो गई। संसार गया कि परमात्मा हो गया। सच तो यह कहना भी ठीक नहीं कि परमात्मा हो गया। परमात्मा तो था ही, संसार के कारण दिखाई नहीं पड़ता था। मनुष्य कहीं और भागता रहता है इसीलिए जो निकट था वह चूकता जाता है। मनुष्य का मन कहीं दूर चाँद-तारों में भटकता है, इसलिए जो पास था वह दिखाई नहीं पड़ता है।

संतुष्टि संसार की मृत्यु है। संतोष क्रांति है-केवल मन मारने का नाम नहीं है। संतोष का अर्थ यह नहीं कि बड़ा मकान बनता नहीं, चलो छोटे में ही रह लेंगे। मगर भीतर-भीतर कीड़ा काटता रहे। मन तो पीड़ा से भरा है कि काश बड़ा मकान होता। सपना आसानी से नहीं मरता, कायम रहेगा। तथाकथित संतोष ऐसा ही है जैसा ईषप की कहानी में है। एक लोमड़ी छलांग लगाती है। अंगूर के गुच्छे रस भरे हैं, हवा में झूलते हैं। सुबह का सूरज निकला है और लोमड़ी के मुँह से लार टपकती है। उछलती है, कूदती है, मगर गुच्छे बड़े ऊपर हैं, पहुँच नहीं पाती। तभी एक खरगोश छिपा देख रहा है, पास की ही झाड़ी में बैठा है। लोमड़ी को उदास, थकामाँदा जाते देखकर वह कहता है- 'चाची क्या बात है? अंगूर मिले नहीं' और लोमड़ी अकड़कर, सीना फुलाकर कहती है- 'मिले नहीं, नासमझ तुझे किसने कहा? खट्टे हैं। अभी खाने योग्य नहीं।' जो अंगूर न मिले उन्हें व्यक्ति खट्टे होने की घोषणा कर देता है। यह कहते ही हैं-'पद में क्या रखा है!' मगर जरा भीतर टटोलें तो अंगूर खट्टे हैं, ऐसा तो नहीं है। धन में क्या रखा है, सब ठीकरे हैं पर यह बात क्या भीतरी अनुभव से आ रही है?

संतोष बड़ी क्रांति है, इतना सस्ता नहीं। संतोष केवल उन्हें मिलता है, जिनके पास दृष्टि है। जीवन को समझने की कला है। संतोष ऐसी मुर्दा चीज नहीं है जो मजबूरी में समझी जाती है। संतोष जीवंत अग्नि है। उससे जो गुजरा वह परमात्मा में ही उतर जाता है। संतोष का अर्थ है-जीवन को सब तरफ से देखा, सब तरफ से स्वाद लिया और कड़वा पाया। संतोष जीवन का क्षार-निचोड़ है। जीवन की सबसे बड़ी सम्पदा है। लेकिन उन्हीं को संतोष मिलता है जो जीवन को चखते हैं, जीवन को चखने की कठिनाई से गुजरते हैं। सब तरफ दौड़कर अनुभव कर लिया कि भविष्य की आकांक्षा व्यर्थ है। इस बोध से तृष्णा गई। इस बोध से अब जहाँ हूँ, जैसा हूँ, उसी में मगन-भाव हुआ। संतोष आया तो संसार गया।

आकांक्षा, तृष्णा, वासना में उलझे रहना ही संसार है। श्री क्षत्रिय युवक संघ की साधना में इन्हीं को नियंत्रित करते हुए सामाजिक रूप दिया जाता है। व्यष्टि से समष्टि की यह यात्रा है। रूप बदलने की इसी साधना से समष्टि से परमेष्टि की यात्रा सरल हो जाती है।

प्रेम पौशाक

समस्त राजपूती पौशाकों के होलसेल विक्रेता

भँवर सिंह पीपासर
9828130003

रिडमल सिंह महणसर
9829027627

शॉप नं. 93, जोधपुर स्वीट्स
के सामने, खातीपुरा रोड़,
झोटवाड़ा, जयपुर

दातारसिंह दुगोली
7339926252
गली नं. 16 कॉर्नर,
बी.जे.एस. कॉलोनी,
पावटा बी रोड़,
जोधपुर

संघ संस्थापक पू. तनसिंह जी

की जयन्ती पर हार्दिक शुभकामनाएं

विरेन्द्र सिंह तलावदा
Contractor
(M) 94143-96530

जीने के बहाने मुझे आये नहीं,
रंग बिरंगे रंग मुझे भाये नहीं।
तेरे ही रंग में जीने के ढंग हैं,
प्राणों में प्राण को जोड़दे।।

प्रवेश चालू - सीधे दसवीं करें

- सरकारी ओपन बोर्ड से घर बैठे बिना टी.सी. (TC) किसी भी उम्र में आधार कार्ड से सीधे दसवीं करें। 10वीं पास सीधे 12वीं आर्ट्स, साईन्स या कॉमर्स में करें।
- स्कूल छोड़ चुके महिला एवं पुरुष के लिए आगे पढ़ने का सुनहरा अवसर।
- नर्सिंग, फार्मेसी करने के लिए साइन्स से 12वी करने का अवसर।
- 5,6,7,8,9वीं फेल या पास सीधे दसवीं करें।

NIOS भारत सरकार का सरकारी ओपन बोर्ड

परीक्षा : सितम्बर, अक्टूबर 2020 में

आदर्श सीनियर सैकण्डरी स्कूल

सोलंकिया तला, शेरगढ़, जोधपुर
सांगसिंह समन्वयक 9783202923, 8209091787
NIOS कोड 170347

पू. तनसिंह जी की जन्मतिथि पर हार्दिक शुभकामनाएं

बुलाता खून मुझे अपना सदियों बाद सिमटने को,
उठती हूक थी गहरी उमड़ी है भभकने को,
जो थाती कौम की पाई उसे मैं खो नहीं सकता ।।

IAS / RAS

तैयारी करने का राजस्थान का सर्वश्रेष्ठ संस्थान

स्प्रिंग बोर्ड

Spring Board

Springboard Academy, Main Riddi Siddi Choraha,
Opposite Bank of Baroda, Gopalpura, Bypass Jaipur
Website : www.springboardindia.org

फरवरी, सन् 2020
वर्ष : 57, अंक : 02

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्...

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह